वैदिक धर्म का आगामी वर्ष।

इसके पश्चात और एक अंक प्रकाशित होनेसे वैदिक धर्मका षष्ठवर्ष समाप्त होगा और क्रमांक ७३ से सप्तम वर्षका प्रारंभ होगा।

(१) इस समय इसकी पृष्ठसंख्या ३२ है। परंतु अगले वर्षसे इसकी पृष्ठसंख्या ४० की जायगी।

(२) वार्षिक मूल्य म. आ० से ३॥) है और वी. पी. से ३।।।=) है, वह वार्षिक मूल्य म. आ. से ४) रु. और वी. पी. से ४॥) रु. होगा।

(३) प्रतिमास सुंदर वेदमंत्र अनेक रंगोंमें मुद्रित करके वैदिक धर्म मासिक के साथ दिये जांयगे।

(४) प्रतिमास कमसे कम आठ पृष्ठ वेदमंत्रों के स्वाध्याय केलिये दिये जांयगे।

तथा अन्यान्य परिवर्तन बहुतसे किये जांयगे जो अवश्य ही इस मासिक की उपयुक्तताको बढायेंगे इतना करने पर भी एक —

सहूलियत

पाठकोंको देनेका विचार है। जो पाठक इस सहूलियत से फायदा उठाना चाहते हैं वे शीघ्र ही उठावें क्यों कि यह सहूलियत एक जनवरी १९२६ के पश्चात् मिलेगी नहीं।

सहूलियत की हद।

(१) जो पाठक दो सालका चंदा इकट्ठा भेज देंगे वे केवल सात रु० में दो वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते है। इससे उनका एक रु० का लाभ होगा।

(२) जो पाठक तीन सालका चंदा इकट्ठा भेज देंगे वे केवल दस रु० में तीन वर्ष वैदिक धर्म प्राप्त कर सकते हैं। इससे उनका दो रु०का लाभ होगा।

स्मरण रहे कि यह चंदा ३१ दिसंबर सन १९२५ तक ही आना चाहिये। आगामी जनवरीसे इस सहूलियत के चंदका स्वीकार नहीं होगा। और उनको म. आ. से चार रु. और वी.पी. से ४॥)रु. ही देना पडेगा आशा है कि पाठक इससे अपना लाभ उठावेंगे।

पाठकोंसे प्रार्थना।

इस वर्ष यदि पाठक कमसेकम एक नया ग्राहक वैदिक धर्म के लिये देनेकी कृपा करेंगे तो हम इस में अधिकाधिक सुधार कर सकते हैं। आशा है कि पाठक इतनी सहायता करेंगे।

प्रबंधकर्ता — वैदिक धर्म।

छप गया ! छप गया ! छप गया ! ! !

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य ।

(लेखक-प्रो० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न गुरुकुल कांगडी)

श्री. स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं-

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडीके वेदोपाध्याय श्री. पं. चंद्रमणि विद्यालंकार पालिरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त की अनुवाद और व्याख्या करके आर्य-जगत् का बडा उपकार किया है। इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते है, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है। छपाई अच्छी है। मेरी सम्मति मे प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा, एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर, अलाहाबाद युनिवर्सिटी, लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है। मैं बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था। इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेताओंसे पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशनमें समर्थ हो सकें।

श्री० मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल ईन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं।

मैने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा। इस ग्रंथ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है। इस अनुसंधान-युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए-ऐसा मेरा दृढ मत है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगल-वाद करता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियोंको वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए। पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु० है।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० आने

२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य। ८ आने

३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेंगी।

पता—प्रबन्धकर्ता अलंकार, गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

❀ म हा भा र त । ❀

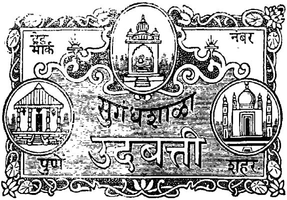
[सुंदर चित्रोंके साथ]

आर्यों का प्राचीन इतिहासिक महाकाव्य ।

कायस्थ वर की आवश्यकता ।

मेरे एक कायस्थ मित्र (सकसेना दूसरे) की चौदह वर्षीया कन्याके लिये वर की आवश्यकता है जो कायस्थों के बारह विभागों में से किसी भी विभाग का हो, आयु २०–२२ वर्ष की हो, पढा लिखा, सुंदर सुशील, स्वस्थ, सदाचारी तथा आर्यसामाजिक परिवार का हो। यदि पढता हो तो कम से मैट्रिक पास हो। यदि व्यवसाय करता हो तो कम से कम ५०) मासिक उपार्जन करता हो। कन्या पढी, लिखी, सुशील सुंदर, स्वस्थ तथा गृहकार्य में कुशल है।

आवश्यक पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर कीजिये शिवदयालगुप्त सबअसिस्टेंट सर्जन, इटावा (कोटा राज्य) राजपूताना



सर्व नमुने २० तोळे वी. पी. नें. १॥ दीड रु.

उंची नमुने ६० तोळे वी. पी. नें ५ पांच रु. एक वेळ नमुने मागवा म्हणजे खात्री होईल.

व्यवस्थापक—सुगंधशाळा, किनई, (जि. सातारा).

वर्ष ६
अंक ११
क्रमांक ७१

कार्तिक
संवत १९८२
नवंबर
सन १९२५

वैदिकधर्म

वैदिक तत्त्वज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

शूर वीर आगे बढे ।

मा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।
भगो अनुप्रयुंक्तामिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥
अथर्व. १२ । १ ।

(सा) वह (नः भूमिः) हमारी मातृभूमि, (यत् धनं) जो धन हम (कामयामहे) चाहते हैं, हमे (आदिशतु) देवे । (भगः) धनवान् (अनु प्रयुंक्तां) पीछेसे प्रेरणा करे और (इन्द्रः) शत्रुनाशक वीर (पुरोगवः) अग्रगामी होकर (एतु) चले ॥

ऐसी श्रेष्ठ हमारी मातृभूमि हमें सब अभीष्ट धन देवे । वीर लोग सबसे आगे बढें और धनी लोग उनकी योग्य सहायता धनके द्वारा करें । राष्ट्रहित के कार्य के लिये वीर लोग आगे बढे और धनी उनकी सहायता करें ।

"भारतवर्षमें यज्ञकी कमी।"

भूमिका।

इस देशमें होनेवाले किसीभी सार्वजनिक कार्यकी गतिको देखते हुए यह अनुभव हुए विना नहीं रहता कि हम लोग "यज्ञ" को नहीं समझते। 'यज्ञ' शब्दका उच्चारण बेशक हम लोगही करते हैं परन्तु जो यज्ञवस्तु है उसे हमही सबसे कम समझते हैं। संसार के अन्य उन्नत देशोंमें 'यज्ञ' शब्द तो बोला नहीं जाता (क्यों कि उनकी भाषायें हमसे भिन्न हैं) परन्तु यज्ञवस्तुका अनुष्ठान हमारे अपेक्षा वे बहुत अधिक करते हैं, इसी लिये वे उन्नत और सुखी हैं।

हमारे लिये यज्ञशब्द मुर्दा होगया है। वेदों और शास्त्रोंमें, सब प्राचीन संस्कृत साहित्य में हम "यज्ञ" शब्द बार बार पढते हुये भी किसी सजीव वस्तुका बोध नहीं प्राप्त करते है। हमारा सब साहित्य ही मृतप्राय है। यह बहुत थोडोंके लिये जीवनरूपमें है। शब्द जीवित तब होते है जब उनके अर्थोंका किसी जनसमुदायके मनुष्य-जीवन के साथ सम्बन्ध होता है। जिन शब्दोंका केवल उच्चारण शेष रह जाता है और उनके अर्थोंसे जीवन का कुछ सम्बन्ध नहीं रहता वे शब्द मर जाते हैं और उन मरे शब्दोंसे बने साहित्य भी मर जाते हैं। तो स्पष्ट है कि हम वैदिकधर्मावलम्बियोंको क्या कर्तव्य है जो कि वैदिक साहित्यका पुनरुज्जीवन करना चाहते है? वैदिक साहित्यमें वर्णित बातों को अपने दैनंदिनीय व्यवहारमें लाना चाहिये। इसके बिना कभी भी वैदिक साहित्य जीवित नहीं हो सकता। यहीं तो 'यज्ञ' का प्रकरण चला रहा है। हमें अपने जीवनों को 'यज्ञीय' बनानेका यत्न करना चाहिये। जितना जितना हम यज्ञवस्तु को अपने दैनिक जीवन में वर्तेंगे उतना उतना ही यज्ञका तत्त्व, यज्ञका रहस्य, यज्ञका वास्तव अर्थ प्रगट होता जायगा। और धीरे धीरे इसी प्रकार हमें यज्ञका असली तत्त्व स्पष्टतया प्रकाशित हो जायगा, तथा हमारे बहुतसे भ्रम दूर हो जायंगे। हमारे शास्त्रों में जो यज्ञके बडे बडे आश्चर्यकारी फल बतलाए हैं, तब हम उन्हें न केवल सत्य समझेंगे पर उन्हें साक्षात्प्राप्त किया करेंगे। तब हमारे शास्त्रों को कौन मुर्दा कह सकेगा? और यज्ञ जैसे एक महत्त्व के विषय को पुनरुज्जीवित करना हमारी बहुत ही भारी सफलता होगी।

२ यज्ञ की महिमा।

वैदिक साहित्य में यज्ञका बडा भारी महात्म्य है, यह बात तो इसीसे प्रगट है कि इस सभी साहित्यमें—इस साहित्य की प्रत्येक पुस्तकमें—यज्ञचर्चा भरी पडी है।

प्राचीन वैदिक साहित्यमें से यदि सब यज्ञसम्बन्धी स्थलोंका उद्धरण मात्र किया जाय तो एक बडा भारी पोथा बन जायगा। बहुतसे लोग तो मानते हैं कि वेदमें केवल यज्ञका ही विषय है। हम भी इसे ठीक समझते हैं। परन्तु केवल भेद इतना है कि हम यज्ञका अर्थ बहुत विस्तृत समझते हैं। 'याज्ञिक' कहलाने वाले लोग जिस वस्तुको यज्ञ कहते हैं हमारा यज्ञ उससे बहुत विशाल है, व्यापक है। बल्कि हम तो कहते हैं कि चारों वेद पैदा ही यज्ञसे हुए हैं।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

इत्यादि। अस्तु। हम यहां तो यह कह रहे हैं कि वैदिक साहित्यमें सर्वत्र यज्ञका वर्णन है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, गीता (महाभारत) आदि सब ग्रंथों में जो यज्ञका बहुत बहुत व्याख्यान है वह बतलाता है कि वैदिक धर्म में यज्ञ का महात्म्य कितना अधिक है और हमारा स्वभावतः ध्यान खींचता है कि हम ऐसी अद्भुत वस्तु को जाने कि यज्ञ क्या है।

३ सबको बांधे रखनेवाली वस्तु।

इस यज्ञ महात्म्यके प्रकरण में निम्न लिखित वेदमन्त्र ध्यान देने योग्य हैं—

अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।

ऋ० १। १६४। ३५ यजु० २३। ६२

अथ० ९। १०। १४

"यह यज्ञ सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी नाभि है, बान्धने वाला है।" यह मन्त्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद तीनों में आता है। इससे पहिले मन्त्रमें प्रश्न किया गया है—

"पृच्छामि विश्वस्य भुवनस्य नाभिम्।"

(ऋ० १। १६४। ३४, यजु० २३। ६१, अथ० ९। १०। १३)

इस मन्त्रके चारों पादों में चार ही प्रश्न हैं और अगले मन्त्रमें क्रमशः इन चारों के उत्तर हैं। शेष तीन प्रश्नोंका यहां प्रसंग न होनेसे उन्हे छोड दिया है और यहां एक एक पाद ही दोनों मन्त्रो का उद्धृत किया है। प्रश्न यह है "मैं तुम से पूछता हूं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको बांधने वाली वस्तु कौन है।" इसका उत्तर दिया है कि यह यज्ञ इस संसार को बांधनेवाला है।

"अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः।"

तो फिर यह जानना चाहिये कि यह यज्ञ क्या है, कहां है जिससे कि सब संसार बंधा हुआ है?

४ यज्ञका मुख्यार्थ।

"भारतवर्ष में यज्ञ की कमी" यह शीर्षक देखकर कई लोग समझेंगे कि शायद मैं इस लेखद्वारा इस बातपर जोर देने लगा हूं कि भारतवर्ष में प्रत्येक घरमें प्रातः और सायं अग्निहोत्र होना चाहिये। परन्तु यह बात तो दूर है। अन्य उन्नत देशोंकी अपेक्षा से तो इस बातकी भारत में कमी भी नहीं है। यज्ञ और अग्निहोत्र में भेद है। अग्निहोत्र भी एक प्रकारका यज्ञ है अर्थात् यज्ञ अग्निहोत्र से एक बहुत व्यापक वस्तु है। यज्ञ वह है जिससे कि सब ब्रह्माण्ड बन्धा हुआ है, बिखरता नहीं। अग्निहोत्र तो गृहस्थाश्रमियों के नैत्यिक कर्मोंमें से एक कर्म है। परन्तु यह कर्म भी वृथा है जब तक कि हम यज्ञके असली अर्थको नहीं समझते। वह असली अर्थ क्या है? इसे प्रकट करने के लिये मै निम्न लिखित शब्दोंको प्रयोग करूंगा।

मेल, मिलना, जुडना, सम्बन्ध रखना, ठीक तरह जुडना, ठीक तरह सम्बन्ध स्थापित रखना।"

इन शब्दोंका स्पष्टीकरण आगे इसी लेखमें आता जायगा। यहां केवल यह अभीष्ट है कि पाठकोंको पता लगे कि यज्ञ के अर्थ में मुख्य बात "संगतिकरण" है या वेदके भावानुसार कहा जाय तो 'बांधे रखना" (नाभि) यह यज्ञका मुख्य चिन्ह है। परन्तु यज्ञका एक अर्थ क्या हुवा? यज्ञका लक्षण क्या है? यदि यह मुझसे पूछा जाय तो मैं कहूंगा कि—

मिल कर किये जानेवाले शुभकर्म का नाम यज्ञ है।

यही यज्ञका लक्षण है। यही यज्ञका मुख्य अर्थ है। इसी अर्थ में वेदशास्त्रोंने यह शब्द मुख्यतया कहा गया है। यह मेरी स्थापना है। इस स्थापना के आधार परही मेरा अन्य सब कथन है। अतः इसे विना सिद्ध किये आगे चलना कठिन है। उपर्युक्त लक्षण ही यज्ञका मुख्यार्थ है यदि इस पर पाठकोंका विश्वास न हुआ तो मेरा यह लेख लिखने का श्रम ही व्यर्थ जायगा। अतः पहिले इस स्थापना को पुष्ट, प्रमाणित और स्पष्ट करके हम आगे चलेंगे। आशा है पाठक धैर्य रखेंगे यदि इसके कारण "भारतवर्षमें यज्ञ की कमी" कैसे है यह दिखलाने में कुछ विलम्ब हो जाय।

२ "यज्ञ" वाच्य अर्थ।

यज्ञका स्वरूप समझना और समझाना अवश्य बडा कठिन है। परन्तु सत्यान्वेषण के लिये हमें यह दुःसाहस या सुसाहस ही करना चाहिये। चाहे पीछेसे कोई साहस दुःसाहस साबित हो, परन्तु सत्यान्वेषण में वहभी सहायक होता है। अस्तु। प्राचीन साहित्यमें यज्ञ शब्द बहुतसे भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुवा प्रतीत होता है। अतः स्वभावतः स्वाध्यायकर्ता विचलित हो जाता है कि फिर यज्ञका मतलब क्या हुवा? परन्तु हमारी समझमें उन सब यज्ञ के अर्थों में एकसूत्र होना चाहिये और है। उस सूत्र को जहांतक मैंने पहिचाना है मैं इसी निश्चय पर पहुंचा हूं कि वह सूत्र वह है जिसे कि उपर मैंने "मेल, मिलना, जुडना, ठीक तरह संबन्ध स्थापित रखना" इन शब्दोंसे प्रकट करना चाहा है। इस सूत्रको सर्वत्र गया हुआ दिखलाने के लिये यज्ञ शब्दके जो जो वाच्य प्राचीन साहित्य में हुए हैं उन्हें एक क्रमसे रखता हूं। आशा है पाठकगण इनकी व्याख्या पढते हुए इस सूत्र को सुगमतासे उनमें देखते जायंगे। पहिले इन यज्ञवाच्य अर्थोंको केवल गिनाता हूं।

(१) परमात्मा यज्ञ है।
(२) यह संसार यज्ञ है।
(३) संगठित मनुष्यसमुदाय यज्ञ है।
(४) मनुष्यजीवन यज्ञ है।
(५) मनुष्यका प्रत्येक श्रेष्ठ कर्तव्यकर्म भी यज्ञवाच्य है।

इन अर्थोंके अतिरिक्त यदि कोई अन्य यज्ञवाच्य रह गये हुवे पाठकोंको प्रतीत होंगे तो वे आगे देखेंगे कि इन पांच या पांच प्रकारके अर्थों की व्याख्या में वे संभवतः आजायंगे। अस्तु। पाठकोंको ध्यान होगा कि इन पांच अर्थोंमें तीसरा अर्थही मुझे मुख्य अभिप्रेत है। यहां दिखलाता हुआ कि यह तीसरा अर्थही यज्ञ का मुख्यार्थ है मैं क्रमशः इन पांचों का स्पष्टीकरण करता हूं।

(१) सबसे पहिले परमात्माका नाम यज्ञ है। उसने इस सब संसार को पूर्णतया ठीक ठीक जोडा है अर्थात् उसने अपने यज्ञरूप से इस संसार को रचा है। अत एव पुरुषसूक्त में इस परमात्मपुरुषको बारबार यज्ञ नामसे पुकारा है। परमात्मामें यज्ञकी भी पराकाष्ठा है।

"यज्ञो यत्र पराक्रान्तः।"

अतएव मनुष्य के किये हुए सब यज्ञोंका अन्तिम एक मात्र विषय वही है। वह यज्ञरूप है। इसलिये उसे यज्ञ शब्द से पुकारा जाता है। परन्तु परमात्मा तो सब कुछ है अतः यज्ञ भी है। वह संसार का मूल है, अतः संसार व्यापक यज्ञ का मूल भी वही होने से उसका नाम यज्ञ भी हो गया। जैसे अग्नि वायु आदि उसके सैकड़ों नाम हैं वैसे ही यज्ञ भी एक उसका नाम है। यज्ञ उसका मुख्य नाम नहीं है।

(२) यह संसार यज्ञ है। वेदमें बहुत जगह इस संसार को यज्ञ कहा है। यह असल में यज्ञ है। यज्ञका अर्थ इसीमें स्पष्टतया दीखता है। परमात्मा तो इसमें भी यज्ञत्व का देनेवाला होनेके कारण यज्ञ कहलाता है। यह संसार बड़ी अच्छी तरह ठीक ठीक जुड़ा हुआ है, इसमें सब कार्य ठीक ठीक अटल नियमों द्वारा इस तरह हो रहे हैं कि यह सबेद सब वस्तुयें ठीक ठीक स्थानपर ठीक ठीक सम्बन्धमें विद्यमान रहती हैं। यह संसार ठीक तरह बंधा हुआ है। ऐसा बंधा हुआ है कि मिलकर एक वस्तु बना हुआ है। और इतनी अच्छी तरह बंधा हुआ है कि यह सब मिलकर पूर्ण है।

'पूर्णात्पूर्णमुदचति।'

यह संसार यज्ञ है।

परन्तु इस पूर्ण यज्ञका कर्ता है परमात्मा। इसीलिये यह यज्ञ पूर्णतया सदा बिना त्रुटिके चल रहा है। हम अल्पज्ञ, अल्प शक्ति जीवों में से कोई इस यज्ञको नहीं कर सकता है। अतः हमारे लिये यह यज्ञ भी गौण है। इसे हमने नहीं करना है। यह परमात्मा का यज्ञ है। हमें तो वह यज्ञ जानना है जो कि हम मनुष्यों ने करना है। वह इन दोनों में से कोई नहीं है।

(३) इन दो यज्ञों के बाद जो शेष तीसरा, चौथा, पांचवां यज्ञ रह गये हैं वे हम मनुष्यों ने करने है ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु इनमें भी चौथे के विषय में वस्तुतः ऐसा नहीं कहा जा सकता है जैसा कि चौथे की व्याख्यामें बतलाया जायगा तथा पांचवें वो यज्ञांग होने से ही यज्ञ कहा जाता है यह भी वहीं दिखलाया जायगा। अतः यह तीसरा अर्थात् "मनुष्यों का संगठित समुदाय" ही मुख्य यज्ञ है जो कि मनुष्यने करना है। और इसी वास्तविक यज्ञ की भारत वर्षमें बहुत कमी है। क्यों कि पीछे इस मत लेखमें इसी असली यज्ञ की व्याख्या होनी है अतः यहां इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना कह देना आवश्यक है कि सब सभा, समिति, संग्राम इसी यज्ञ में आते हैं अर्थात् सब संगठण, सब संघ, सब संस्थायें इसी में समाविष्ट हैं, कर्म काण्ड के प्रसिद्ध बड़े बड़े (आज कल यज्ञ शब्द इन्हीं में बहुत प्रयुक्त होता है) राजसूय विश्वजित् आदि यज्ञ इसी तीसरे प्रकार के अर्थमें आते है।

(४) फिर मनुष्य जीवन यज्ञ है। ऊपर संसार का यज्ञ कहा है जिस का कि कर्ता परमात्मा है। मनुष्यभी संसारकी एक छोटीसी प्रतिमा है। एवं यह मनुष्यजीवन भी एक यज्ञ है जिसे कि जीवात्मा (इन्द्र) शतक्रतु बनकर सौवर्ष तक चलाता है। मनुष्य-जीवन यज्ञ है इसका बड़ा सुन्दर वर्णन छांदोग्योपनिषद् में हुवा हुवा है। पर मनुष्य जीवन क्या है? अपने अन्दरकी सब वस्तुओं को ठीक जोड़े रखना, उनका सम्बन्ध बिगड़ने न देना और साथ ही संसार के साथ सम्बन्ध न बिगाड़ना। संबन्ध बिगड़ते ही यज्ञ विध्वंस होजाता है। रोग या कोई अन्य

कष्ट आते हैं। इस पवित्र यज्ञको बडी सावधानी से चलाना चाहिये।

परन्तु पाठकोंको देखना चाहिये कि यह यज्ञ मनुष्य का प्रारंभ किया हुआ नहीं है। यह प्रारम्भ तो परमात्मा का किया हुआ है। मनुष्य ने तो इसे ठीक तरह चलाना है या (ऐसा कहना अधिक ठीक है) चलते रखना है। परमात्मा के यज्ञ का-संसार का मनुष्य भी एक अवयव है। अतः यह भी एक तरह उसी का यज्ञ है, परन्तु उसने इसे चलानेका काम अपनी आधीनता में जीव को सौंप रखा है। मनुष्य की दृष्टि यही होनी चाहिये कि यह मेरा जीवन परमात्मा की वस्तु है-उसके यज्ञका एक अंग है-इसे बिगडने न देना तथा संसारयज्ञ में काम आने के लिये इसे ठीक तरह चलाना ही उसका कर्तव्य है। अस्तु। तात्पर्य यह है कि यह यज्ञ भी वह नहीं है जिसे कि मनुष्य ने स्वयं रचना है, चलाना है और पूर्ण करके लाभ प्राप्त करना है। ऐसा यज्ञ तो उपर्युक्त " मनुष्य संगठन " ही है। इस मनुष्य-यज्ञ को तो मनुष्यने संसारयज्ञके आधीन चलते रखना है, बस यही कर्तव्य है, परन्तु इस कर्तव्य के लिये जो उसने स्वयं यज्ञ रचने हैं और चलाने है वे नाना प्रकार के मनुष्यसंगठनरूप यज्ञ हैं।

इस बात को और स्पष्टतया देखनेके लिये यों विचारना चाहिये कि यज्ञ एक पुरुष है। यज्ञ पुरुष का वर्णन हमारे साहित्य में प्रायः पाया जाता है। यहां पुरुष का अर्थ है " अवयववान् शरीर " या " संगठन ", (Organized Body या Organization)। संसार और मनुष्य ये दोनों यद " पुरुष " हैं (Organism है)। संसार भी पुरुष है, विराट् शरीर प्रसिद्ध है। मनुष्य तो पुरुष (Organisation) है ही। परन्तु ये दोनों (संसार और मनुष्य) पुरुष (Organisation) पहिलेसे बने हुए हैं। मनुष्य ने जो पुरुष बनाना है-अवयववान् शरीर बनाना है वह अपने आपसे बनाना है अर्थात् मनुष्योंका सामुदायिक संगठनरूपमें बनाना है। यह राष्ट्रपुरुष है (Body Politic) या समाज पुरुष है, एवं अन्य पुरुष है। यही (पुरुष) यज्ञ है जो कि मनुष्यने करना है। इस लिये मैं कहता हूं कि मनुष्यने जो यज्ञ करना है वह " मिलकर किये जानेवाले किसी संगठित कार्य " के रूप में है। यही हमारे यज्ञ का अर्थ है। अस्तु। यहां तो इतनाही अभिमत था कि मनुष्यजीवन यज्ञ भी वह यज्ञ नहीं है, जो कि मनुष्यने करना है।

(५) यज्ञ का अन्तिम वाच्य अर्थ मनुष्य के प्रत्येक उस कर्म का है जिस से कि उसका इस (परमात्मा के) संसार के साथ ठीक सम्बन्ध जुडा रहता है। इस प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म का नाम, प्रत्येक कर्तव्य का नाम यज्ञ है, क्यों कि उचित अर्थात् प्रकृतिनियमों के अनुकूल कर्मसे यह संसार संगत रहता है-जुडता है। हमारे प्रत्येक बुरे, नियमों के विपरीत कार्य से संसार बिगडता है-बिखरता है, हमारा जगत् से सम्बन्ध उखडता है और फलतः हमें क्लेश पहुंचता है। ये सब अयज्ञ कर्म है। भगवद्गीतामें कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ॥
भ० गी० ३। ९

" इस लोकमें वे ही कर्म बन्धन होते हैं जो कि यज्ञार्थ के अतिरिक्त किये जाते हैं। " इस का अर्थ यह हुआ कि यज्ञार्थ कर्म ही हमें करने चाहिये, क्यों कि यज्ञ के लिये-संसारयज्ञको ठीक तरह चलने के

लिये – जो कर्म किये जाते हैं (वे निष्काम स्वयमेव ही होंगे) उनके करने से बन्धन कभी नहीं होता। एवं अन्यत्र गीता में कहा है कि यज्ञ, दान और तप ये कर्म करने चाहियें। यदि यज्ञका उपर्युक्त अर्थ लें तो दान और तपभी इसी में आजायंगे और इस प्रकार गीता का कहना है कि यज्ञके अतिरिक्त और कुछ कर्म नहीं करना चाहिये अथवा हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञ होना चाहिये। यज्ञ के इस अर्थ में बहुत से यज्ञ आजाते हैं। भगवद्गीतामें चौथे अध्यायके २५ से ३२ श्लोकों में जो बहुतसे यज्ञों का वर्णन है वहां यज्ञ इसी अर्थ में है।

"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।"

यहां भी इसी अर्थमें यज्ञशब्द है। सन्ध्या और अग्निहोत्र को यज्ञ इसी अर्थमें कहते हैं। पांचों महायज्ञ प्रसिद्ध हैं। गीतामें स्वधर्मपालन को ही यज्ञ कहा है। ये सब बातें यज्ञ के इसी अर्थ में संगत हैं। यदि प्रातः से सायंतक हमारा प्रत्येक कर्म "यह मेरा कर्म जगत्–यज्ञ के चलाने के लिये है" "यह कर्म भगवान् के लिये है" इस भावनासे किया जाय तो हमारा प्रत्येक कर्म यज्ञही हो जायगा और हम जीवन्मुक्तिका आनन्द लेंगे। परन्तु यज्ञ का यह अर्थ मेरी समझमें लाक्षणिक अर्थ है। मुख्य अर्थ नहीं। यहां यज्ञ के एक अंग कर्म को यज्ञ कहा जाता है या भगवद्गीता के शब्दों में "यज्ञार्थ कर्म" को यज्ञ कह दिया जाता है। ये कर्म मुख्य अर्थ में यज्ञ नहीं है किन्तु संसार यज्ञ के या मनुष्यजीवन यज्ञ के या अन्य मनुष्यकृत संगठन यज्ञ के अंग होने से यज्ञ कहलाते हैं। उदाहरणार्थ राष्ट्रीय महासभा का चर्खासंगठन एक यज्ञ है, जो कि प्रत्येक राष्ट्रसभासद के चर्खा चलानेसे बना है। परन्तु व्यक्ति के चर्खा चलाने के कर्म के लिये भी यज्ञ शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि यज्ञ के एक कर्म को भी यज्ञ कहा जाता है। इसे खूब ध्यान रखना चाहिये कि इस अर्थ में साहित्य में यज्ञका बहुत बहुत प्रयोग हुआ है। यह ठीक भी है। क्यों कि यज्ञ का एक कर्म अर्थात् सामाजिक यज्ञमें एक व्यक्तिका कर्म बडे महत्त्व का है। मैं इसे "वैयक्तिक यज्ञ" के नाम से कह सकता हूं। यद्यपि ये मुख्य यज्ञ नहीं है, तो भी क्यों कि इनके बिना मुख्य सामाजिक यज्ञ नहीं बन सकता इसलिये इन यज्ञों की वैदिक साहित्य में इतनी चर्चा है तथा इन्हें यज्ञ नामसे ही पुकारा गया है। इनका विशेष वर्णन अन्त में किया जायगा।

६ इन अर्थों का समन्वय।

इन पांचों यज्ञार्थों की व्याख्या से यह स्पष्ट होगया होगा पहिला दूसरा और चौथा यज्ञ ऐसा है जो कि स्वयं हो रहा है इसे मनुष्यने नहीं रचना है और पांचवां वास्तवमें यज्ञ नहीं है किन्तु यज्ञार्थ कर्म है। इसलिये तीसरा ही वास्तविक यज्ञ है। इसलिये हमारी यह स्थापना प्रमाणित हुई कि यज्ञका मुख्य अर्थ है "मिलकर किये जानेवाला संगठित शुभ कार्य।" इस सब विवेचनका एक वाक्य में अर्थ यह हुआ कि यह संसार यज्ञस्वरूप परमात्मा का चलाया हुवा एक बडा भारी महायज्ञ है, इसी महायज्ञ के अन्तर्गत उसीके नियन्त्रण में मनुष्यों के जीवनरूपी बहुत से छोटे छोटे यज्ञ भी चल रहे हैं, इस लिये कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को न केवल यह चाहिये कि वह सब ऐसे ही कर्म करे जो कि इस महायज्ञ के अनुकूल हों -- सहायक हों अर्थात यज्ञार्थ कर्म ही करें, अपि तु सब स्वयं भी ऐसे यज्ञ (जो कि मनुष्य संगठन का नाम है) करने चाहियें जो कि

इन महायज्ञके अनुरूप हों अर्थात् हमारे यज्ञ-हम संगठन-ऐसे ठीक होने चाहिये जैसे कि यह संसार है या ऐसे सुसंगठित (well organised) होने चाहिये जैसे कि यह शरीर है।

संक्षेप में इस का अर्थ यह है कि जैसे आधिदैविक यज्ञ संसारमें हो रहा है और आध्यात्मिक यज्ञ शरीर में हो रहा है उसी तरह मनुष्य को भी यज्ञ करना चाहिये अर्थात् आधिभौतिक संगठित शरीर बना कर कार्य करना चाहिये। यही यज्ञ का वास्तविक अर्थ है। इसी लिये शायद (निरुक्त के पढनेवाले जानते हैं) निरुक्तकारने मन्त्रों के आधिदैविक अर्थ किये हैं और आध्यात्मिक अर्थ भी किये हैं, परन्तु उस में आधिभौतिक अर्थ नहीं दिखाई देते उसकी जगह 'अधियज्ञ' अर्थ विद्यमान है। इसका तात्पर्य यह समझमें आता है कि उन के समय मे आधिभौतिक और यज्ञ बिलकुल समानार्थक होगये थे। इस से भी स्पष्ट है, कि यज्ञका असली अर्थ आधिभौतिक है-सामाजिक है, आध्यात्मिक व वैयक्तिक नहीं।

अब हम इसी वास्तविक यज्ञ की मनुष्यों के संगठित होकर किये जानेवाले कार्यों की ही अच्छी तरह व्याख्या करेंगे। और पीछे से वैयक्तिक यज्ञों की अर्थात् यज्ञार्थ कर्मों की भी व्याख्या करेंगे।

(शेष पुनः)

पशुयाग शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिम निश्चय!

औंध के पशुयाग शास्त्रार्थ के विषयमें अंतिम निश्चय करने के लिये हमने निम्न लिखित पत्र लिखा था—

(१)

हमारा पत्र।

ॐ

स्वाध्याय मंडल औंध (जि सातारा)

ता. २१।०।२५

श्री० धुंडिराज गणेश बापट दीक्षित सोमयाजी

पांचगड (जि. सातारा)

श्रीमत्सु नमस्ते। आपने औंधमें सोमयाग किया था उस की समाप्ति के दिन औंध के पंचवटी राममंदिर में उपस्थित पंडितों की सभा शास्त्रार्थ के विषयमें हुई थी जिस सभामें यह निश्चय हुआ था कि (१) श्री० श्रीधरशास्त्री पाठक संस्कृताध्यापक डे० कालेज, (२) श्री नारायण शास्त्री मराठे आचार्य प्राज्ञ पाठशाला वाई (३) श्री. सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव संचालक नित्यकर्ममाला पूना. तथा [४] आप स्वयं इन चारों की उप सभा शास्त्रार्थ का निश्चय करे। इस सभाको होकर आज कई मास व्यतीत हुए तथापि शास्त्रार्थ के विषयमें आपका अंतिम निश्चय हमें कुछ भी विदित नहीं हुआ। अतः प्रार्थना है कि आप यथा समय अतिशीघ्र शास्त्रार्थ की तिथि का निश्चय करके हमे सूचित कीजिये।

भवदीय

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

इस पत्रका निम्नलिखित उत्तर हमें प्राप्त हुआ

[२]

श्रीयज्ञनारायण।

पाचवड [जि. सातारा]

आश्विन वद्य १० सोमवार शके १८४७]

श्री. पं. श्री. दा. सातवळेकर, औंध.

नमस्कार। औंधमें यज्ञीय पशुहिंसाके संबंधमें जो शास्त्रार्थ होनेका विचार चलरहा था उस संबंधमें व्यक्तिशः मेरा मत और मैंने किस भावना से प्रेरित हो कर औंधमें सोमयाग किया था इस विषयके मेरे विचार मैंने केसरी पत्र में प्रकाशित किये हैं। उस लेख को यदि आप देखेंगे तो आपको मेरा मत ज्ञात हो जायगा। इस से अधिक शास्त्रार्थ के विषयमें वादानुवाद करके व्यक्ति व्यक्ति में झगडा बढाकर समय का व्यय करनेकी अब मेरी इच्छा नहीं है।

भवदीय

धुंडिराज गणेश दीक्षित बापट सोमयाजी।

(३)

[पूनाके केसरीपत्र में प्रकाशित

पत्र]

(ले० श्री. धुंडिराज ग. दीक्षित)

गत फर्वरी मास में औंध में मैंने अग्निष्टोम नामक सोमयाग किया था और उस में पशुहनन करके उसके अंगोकी आहुतियां दी थीं। उस पशुहनन के संबंध में वैदिक धर्मकी आज्ञा न जाननेवाले लोगों ने बहुत कुछ विरुद्ध लेख अखबारों में लिखे थे। इन में जिनकी लेख परंपरा वैदिक धर्म के विषय में तुच्छता दर्शानेवाली है उनको उत्तर देनेकी आवश्यकता नहीं है। परंतु जो वेदधर्म के विषयमें मनमें आदर रखते हैं और जो वेदको प्रमाण मानते हैं उन की शांतिके लिये उचित उत्तर देना आवश्यक है।

ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रमविहित कर्तव्योंमें यज्ञकर्म मुख्य है। यज्ञमें हवन मुख्य है और हवन में अनेक देवताओंके उद्देश्यसे मंत्रपठनपूर्वक विविध पदार्थोंकी आहुतियां दी जाती हैं जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये हव्य है तथा अज मेष आदि पशुओंके अवयवों का मांस भी है।

भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धोंने वैदिक धर्म पर बडा भारी हमला किया जिससे वैदिक यज्ञसंस्थाको बडा धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्तवंशीय राजा लोग, शातकर्णी, चालुक्य, पुलकेशी आदि राजाओंने अश्वमेध जैसे यज्ञ (कि जिन में तीन सौ पशुओंका हवन विहित है) किये और वैदिक परंपरा को स्थिर किया। राजा जयसिंगने भी अश्वमेध यज्ञ किया था।

यज्ञीय हिंसा हिंसा नहीं है।

छांदोग्य उपनिषद् में कहा है कि—

मा हिंस्यात्सर्वाणि भूतानि

अन्यत्रतीर्थेभ्यः।

शांकर भाष्य—तीर्थं नाम शास्त्रानुज्ञाविषयः ततोऽन्यत्रेत्यर्थः।

अर्थात् शास्त्रकी अनुज्ञा जिसको है उस कर्मका नाम तीर्थ है। इस प्रकारके कर्मोंको छोडकर अन्य कर्म में हिंसा करना नहीं चाहिये। तात्पर्य श्री शंकराचार्य भी यज्ञीय हिंसा के विरोधी नहीं थे।

देवतों के उद्देशसे यज्ञप्रसंग में वेदोक्त विधिसे जो पशुहनन होता है उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिये मांस खानेकी इच्छासे जो पशुहनन होता है वह हिंसा है। वेदोक्त पशुहिंसामें देवतोंके लिये मांसाहुतियां समर्पित करनाही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुतशेष मांसका भक्षण करना भी

विधिविहित है । अतः शास्त्राज्ञाका रक्षण करने की इच्छा से ही इस हुतशेष मांसका भक्षण किया जाता है ।

वर्णाश्रमविहित होनेसे ही यज्ञीय पशुहिंसा की जाती है । सोमयाग में पशुहिंसा के विना कर्म-पूर्ण ही नहीं हो सकता । जो निंदक अविचारसे तथा वेदशास्त्रकी मर्यादा का उलंघन करके इस प्र-कार के सोमयागादि वैदिक कर्मोका उपहास करते हैं उनसे यज्ञकर्ता लोग कम अहिंसावादी हैं ऐसा नहीं कहा जा सकता । अहिंसा परम धर्म है ही परंतु उस में भी अपवाद हैं । क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते है उसी प्रकार यज्ञ कर्ता यज्ञ में विधिके कारण पशुहनन करता है ।

दसपांच वर्षों में एकाद पशुयाग होगा उस में कितनीसी हिंसा होती है ? इस लिये अहिंसा-वादियों को उचित है कि वे गौ आदि पशुओंकी हिंसा जो अन्यत्र होती है उसके प्रतिबंध का उपाय सोचें और वे यज्ञ की निंदा न करें ।

यज्ञमें जो पशुहनन होता है वह शस्त्रवध की अपेक्षा कम दुःखदायी है ।

उत्तर दिशाकी ओर पांव करके पशुको भूमिपर लेटाना चाहिये पश्चात् श्वासादि प्राणवायु बंद करके नाक मुख आदि बंद करें इत्यादि सूचनाएं शमिता को कहीं है -

उदीचीनां अस्य पदो निदधतात ।

अंतरेवोष्माणं वारयतात ।

ऐ. ब्रा ६ ।७ तै. ब्रा ३ ।६ ।६

तथा -

अमायुं कृण्वन्तं संज्ञपयतात।

अर्थात् पशुका हनन उसे न्यूनसे न्यून दुःख देते हुए करना चाहिये । इत्यादि आज्ञाएं स्पष्टतासे बता रहीं हैं कि पशुहननके समय पशुको न्यूनसे न्यून दुःख देनाही अभीष्ट है ।

जो लोग मांसभक्षण के लिये पशुमारते हैं वे इससे अधिक दुःख देकर मारते हैं । जैसा की मुर्गी को उबलते पानीमें रखना और गौ आदि पशु की हत्या शस्त्र वध से करना इ० ।अतः यज्ञीय पशुहनन अन्यवधोंसे कम दुःखदायक है ।

अब कईयोंका यह पक्ष है कि आज कल जनता की प्रवृत्ति अहिंसा की ओर विशेष है इस लिये य-ज्ञमें पशुहनन न करते हुए उसके प्रतिनिधिरूप अन्य हविर्द्रव्यसे ही यज्ञ करना उचित है । यह प्रश्न अत्यंत सात्विक है और अत्यंत विचार करने योग्य है । परंतु यह कार्य किसी एक व्यक्तिका नहीं है । वेदविषयमें श्रद्धा रखनेवाले तथा वैदिक कर्मोंके अभिमानी किसी भी अकेले श्रोत्रिय को वैदिककर्मों में इस प्रकार फर्क करनेका कोई अधिकार नहीं है। तथापि यदि वेद विषयमें श्रद्धालु, शास्त्री पंडित तथा अन्य विद्वान इकट्ठे होकर श्रध्दापूर्वक विचार करेंगे और यदि वे पशुहनन के स्थानपर तत्प्रतिनिधिभूत अन्य हवन की योजना करेंगे तो वह मार्ग हरएक को अवश्य स्वीकृत हो जायगा । तथापि इस प्रकार का कोई मार्ग सिध्द होने तक श्रद्धालु श्रोत्रिय को परंपराप्राप्त यज्ञविधिके अनुसार आचरण करना ही योग्य है ।अतः यज्ञकर्ता की इस प्रकार निंदा करना सर्वथैव अयोग्य है ।

यज्ञिय पशुहिंसा के विषय में यही मेरा मत है इस-का विचार सूज्ञ वाचक करें । (केसरी, पूना)

(४)

इस लेखपर केसरी के संपादक महोदयजीका मत।

[श्री. दीक्षित जीका उक्त पत्र प्रसिद्ध करके श्री. संपादक महोदयजीने जो अपनी संमति लिखी है वह भी यहां दी जाती है ताकि पाठक गण उसे देखें और समझ लें की श्री० दीक्षित जी के लेखका परिणाम महाराष्ट्रीय शिक्षित जनता पर कैसा हुआ है]

"सोमयाजी धुंडीराज दीक्षित बापट जी का लेख हमने दूसरी ओर मुद्रित किया है। परंतु इस लेखसे किसी का भी समाधान नहीं हो सकता। जो अहिंसावादी हैं उनको इन के विचारों के साथ सहमति नहीं हो सकती और जो इनके प्रति विरोध रखते हैं वे यह लेख पढने योग्य भी नहीं समझेंगे। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो वेदोक्त श्रौत धर्म करनेवाला श्रोत्रिय जनताकी दृष्टिमें निंदनीय नहीं होना चाहिये था। परंतु देशकाल परिस्थिति के अनुसार धर्माचरण में बदल करना चाहिये यह भी भूलना योग्य नहीं है। वेद के सभी विधिनिषेध त्रिकालाबाधित होते तो कलिवर्ज्य प्रकरण उत्पन्न ही न होता।

इसके अतिरिक्त हिंसामय यज्ञविधि के लिये भी दो पर्याय हो सकते हैं। एक पिष्टका उपयोग पशुके स्थानपर करना तथा दूसरा यह है कि अन्य अहिंसामय यज्ञकर्म करना। पहिला पर्याय तज्ज्ञ शास्त्री लोगोंको संमत होगा या नहीं इस विषयमें हमें शंका है। तथापि दूसरे के विषयमें हमें निश्चय है। हिंसात्मक यज्ञविधिको छोडकर ऐसे सेंकडो यज्ञ विधि हैं जिनमें पूर्ण अहिंसामय कर्म है, उन मौंके होते हुए पशुयागका ही आग्रह ये लोग क्यों करते हैं? ऐसी कौनसी राष्ट्रीय आपत्ति इस समय आगई है कि जिसके कारण इस समय पशुयाग करना ही आवश्यक हुआ है। अपने धर्म में साधनों की अनेकता है इस लिये यदि कोई आपत्ति हटाना हो तो उस कार्य के लिये अहिंसापूर्ण याग भी मिल सकते हैं। इस लिये लोकमतविरुद्ध हिंसायज्ञ न करना ही उत्तम है। बापट दीक्षित अपने लेख में जयसिंग आदिकोंके अश्वमेध का उल्लेख करते हैं। इस पर कहना यह है कि जयसिंग क्षत्रिय है और उस कारण उस को अन्यान्य प्रसंगोंमें हिंसा करना होता ही है। परंतु ब्राह्मणोंके लिये उस प्रकार के हिंसाकर्मों की प्राप्ति ही नहीं है। इस लिये ब्राह्मणों को उचित है कि वे इस प्रकार हिंसापूर्णयाग न करें।" (संपादक – केसरी)

(५)

हमारा विचार।

ऊपर हमने (१) हमारा पत्र, (२) श्री० दीक्षित जीका पत्र, (३) उनका केसरी में प्रसिद्ध लेख और (४) श्री० संपादक केसरी की संमति दी है। श्री० दीक्षित जी के लेख पर जिस प्रकार केसरी जैसे प्रतिष्ठित पत्र की विरुद्ध संमति हुई है उसी प्रकार प्रायः सभी महाराष्ट्रीय पत्रों की विरुद्ध संमति प्रकाशित हुई है। श्री० शंकराचार्य (डा० कुर्तकोटी) जी के अधिष्ठातृत्व में प्रकाशित होने वाले "स्वधर्म" पत्र ने भी इस यज्ञ के विषय में अनुकुल मत नहीं प्रकाशित किया।

प्रारंभ से हमें बहुत ही आशा थी कि श्री०दीक्षित महोदय शास्त्रार्थ के लिये खडे हो जायंगे। प्रेमसे वादानुवाद करने की इच्छा उन्होने पहिले प्रकट भी की थी और तदनुसार ही पूर्वोक्त उपसभा बन गयी थी। इस विषय में उपसभा के एक दो सदस्यों के पत्र भी हमारे पास हैं परंतु उनको यहां मुद्रित करना अनावश्यक है। हमने इन सदस्योंपर पूर्ण विश्वास रखकर शास्त्रार्थ का आह्वान दिया था

और हमारे आह्वान की स्वीकृति सार्वजनिक सभा में भी की गई थी। इतना होनेपर अब ये शास्त्रार्थ से पीछे हट रहे हैं। यदि इनको पहिलेसे शास्त्रार्थ करना मंजूर न था तो आह्वानका स्वीकार ही करना नहीं चाहिये था। सार्वजनिक सभा में आह्वान का स्वीकार करके इस प्रकार अब संपूर्ण तैयारी होनेके पश्चात् पीछे हटने का जो तात्पर्य है वह पाठक जान सकते है।

केसरीके लेखमें श्री० पं० दीक्षितजी लिखते है कि यदि निर्मांस सोमयाग की पद्धति कोई विद्वत्सभा निश्चित करेगी तो हमें वह पद्धति स्वीकृत होगी। यदि यह पं० दीक्षितजीकी भी इच्छा है तो उसका उपाय शास्त्रार्थ के लिये आगे बढना ही है। यदि वे शास्त्रार्थ के लिये आगे बढते तो उस समय हम बता सकते थे कि निर्मांस यज्ञपद्धति किस प्रकार शास्त्रसंमत है और संपूर्ण यज्ञकांड निर्मांस यज्ञपद्धति की ओर ही याजकको कैसा ले जा रहा है।

थोडेही दिन हुए गत भाद्रपद मास में जिस समय पं० दीक्षित जी यहां पधारे थे, उस समय उन्होने "यज्ञ मे सामगान" पर एक व्याख्यान दिया था। इस व्याख्यानमें उन्होंने यह प्रतिपादन किया था कि अत्यंत प्राचीन वेदकालके यज्ञोंमें साधारण रीति से ही वेदमंत्रोंका गान होता था, परंतु आर्य जैसे उत्तर से पंजाबकी ओर उतरे वैसा उनका संबंध गांधारादि देशवासी अनार्योंके साथ हुआ और आर्योंने अनार्योंसे आलापादि गायन प्रक्रिया सीखी और अपनी सामगान पद्धतिका सुधार किया। इसरीति से याज्ञिक साम गानकी उन्नति हुई।

यदि यही विचार पद्धति स्वीकृत की जाय तो वैदिक यज्ञयागका क्रियाकलाप पहिले अपूर्ण था और उस में पीछे से सुधार होता गया, यह मानना पडेगा। वास्तविक रीतिसे देखा जाय तो हमारा इस मतसे पूर्ण विरोध है, परंतु क्षणमात्र पं. दीक्षित जीकी मोहबत के लिये हम यह मत यहां स्वीकार करते हैं और उनसे पूछते है कि यदि देशकाल परिस्थिति के अनुसार वैदिक यज्ञपद्धतिमें बदल होना आप स्वीकार कर रहे हैं और यहांतक आप स्वीकार कर रहे है कि अनार्योंके रीतिरिवाज भी ऋषिमुनियोंने यज्ञक्रिया में घुसेड दिये थे और यज्ञ को जनमनोरंजनका एक साधन बना दिया था, तो आप कैसे मान सकते है कि वैदिक यज्ञपद्धति जैसी परमेश्वर निश्वसित वेदके प्रकट होने के समय में थी वैसी ही आज है और यदि उनमें भिन्नता हुई है तो पूर्व समयका यज्ञ स्वर्ग देनेवाला था, या अनार्योंके रीतिरिवाजोंसे मिश्रित नूतन यज्ञ स्वर्ग देनेवाला है? आपने जो औंधमें सोमयाग किया था वह शुद्ध आर्योंकी विधिसे किया था अथवा उसमें भी अनार्योंके रीतिरिवाज मिले हुए है? यदि है तो कौनसे है और उनको हटाने में आप को कौन सी आपत्ति है? यदि यज्ञोंमे कालानुसार भिन्नता हो सकती है तो पशुयाग के स्थान पर घृत धान्य आदि के हवनसे कार्य किया जा सकता है वा नहीं? आप जानते ही है कि यह आज्यादि प्रतिनिधि ब्राह्मणादि ग्रंथोंमें दियेही है। फिर आपके लिये रुकावट किस कारण होती है?

अस्तु पूर्वोक्त श्री० पं० दीक्षित जीके लेखपर बहुत विस्तार से लिखा जा सकता है परंतु वैसा करना अब व्यर्थ ही है। क्यों कि वे इस बात का निर्णय करना चाहते नहीं। यदि चाहेंगे तो सब कुछ हो सकता है।

हमारा यज्ञ विषयक पुस्तक अब छप रहा है उस में इन सब प्रश्नोंका विचार किया गया है अतः

उसको यहां दुहराना अनावश्यक है। इस लिये पशुयाग विषयक शास्त्रार्थ को यहां ही इस प्रकार समाप्त करते हैं।

जिन सज्जनोंने पशुयाग शास्त्रार्थ विषयक पुस्तक मुद्रणार्थ सहायता भेजी है उनके लिये हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं। उनकी सहायतासे पुस्तकका मुद्रण चल रहा है और पुस्तक छपते ही उनके पास भेजी जायगी। आज तक निम्न लिखित सहायता आगई है-

म. लालचंदजी कपूर	१) रु.
" पुंडलिक प्रभु	२)
" जगदीश प्रसादजी	॥=)
म. ए. आर. तत्वनिधि.	१)
श्री. स्वामि केशवानन्दजी	१)
म. देवीदयालजी वकील	५)
	१०॥=)
योग	१०॥=)
पूर्वांकमें प्रकाशित	१३१७॥≡)
सर्वयोग	१३२८।-)

अब पाठकोंसे निवेदन है कि वे इस कार्य के लिये कोई सहायता न भेजें। पुस्तक का प्रकाशन होनेके पश्चात् दानदाताओंके पास पुस्तक भेजा जायगा और विक्रयार्थ भी रखा जायगा। पुस्तकका मूल्य अत्यंत अल्प रख कर प्रचार की दृष्टिसे ही इसका अधिकसे अधिक प्रचार करने का विचार है ताकि जहां जहां आगे इस प्रकारके पशुयाग होंगे वहां की जनता के लिये यह पुस्तक अत्यंत उपयोगी हो सके और जहांतकवहां हो तक पशुयाग की प्रवृत्ति भी बंद हो जाय और -

वैदिक यज्ञ का विजय हो!

हिंदूजाति के नेताओं की सेवा में एक विचारणीय प्रस्ताव।

(ले. श्री. पं. रामचंद्र भारद्वाज, अंबाला शहर.)

विचार यह है कि अब तक हमने हिन्दू जाति के उत्थान के लिये अनेक उपाय किये परन्तु हमने उन उपायों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जो सहज से ही हमारे हाथ में थे, और जिन से बडे बडे लाभ पहुंचनेकी सम्भावना है। वे उपाय हिन्दुजातिके तीर्थस्थान हैं जिनमें समय समय पर लाखों की संख्या में हिन्दूयात्री (दर्शक) एकत्रित होते हैं।

यह शोक से कहना पडता है कि हमनेइन तीर्थ-स्थानों को उस दृष्टि से नहीं देखा, जिस दृष्टिसे कि ये देखे जाने चाहिये थे, हम ने केवल इनको आडम्बर समझा, और अत: इन की कुछ परवाह न की। परन्तु यह हमारी बडी भूल थी जो हमने अब तक ऐसा किया॥

यह हमें विश्वास होना चाहिये कि हमारे पूर्वज मूर्ख नहीं थे अपितु वे पूर्ण दीर्घदर्शी एवं जातीय संगठन के नियमोंको भलीभांति समझने वाले थे,

भला क्या सम्भव हो सकता है? कि जो दर्शन-शास्त्रोंके पठन पाठन करने वाले हों वे कभी तीर्थ यात्रा को या उन की स्थिति को अच्छा समझते यदि उस में वास्तविक कोई लाभ न देखते, सच तो यह है कि हमने उनके गम्भीर भावों को समझने का प्रयत्न ही नहीं किया। उनकी दृष्टि इतनी गम्भीर थी कि वे जानते थे कि भारतवर्ष जैसे लम्बे चौडे देश में विखरी हुई हिन्दु जाति किस प्रकार एक लडी में पिरोई जासक्ती है, वे अनुभव करते थे कि देश, काल, जल, वायु के प्रभाव से भिन्न भिन्न भषा और भिन्न भिन्न रहनसहन रखती हुई भी हिन्दु जाति किस प्रकार एक शृङ्खला सूत्र म बद्ध हो सकती है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रख कर ही उन्हों ने भारत वर्ष के प्रत्येक प्रान्त में जा जो स्थान जल-वायु की उत्तमता और प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण पाये उसी स्थान को यात्रा (तीर्थ) स्थान निर्धारित करदिया और सर्वसाधारण के प्रवृत्यर्थ जहां तहां कथारूपमे पुस्तकों में रोचक इतिहास लिख दिये जिस का प्रभाव यह हुआ कि एक पञ्जाबी हिन्दु भाई यू० पी० के हिन्दु से अप को पृथक् नही समझ सक्ता, क्योंकि वह जानता है कि वह भी उस की गङ्गा माताको अथवा जगन्नाथपुरी को ऐसा ही पवित्र स्थान समझता है जैसा कि वह अपने आप ॥

एवं दूसरे प्रान्तवासी भी आपस में एक दूसरे को सजातीय भाई समझते हैं दूसरा लाभ जो इन तार्थ स्थानों से हुआ है, वह यह है कि जितने भी रमणीक (प्राकृतिक सान्दयपूर्ण) स्थान भारतवर्ष म थे, वे सब इतने घोर राष्ट्र विप्लव होने पर अब तक हिन्दूजनता के ही अधिकार में है। तीसरा लाभ यह है कि यदि यात्रा प्रथा न होती तो उस समय जब कि रेल और तार के अभाव से यात्रा में बडी कठिनाईयां थी तो कौन घरसे निकल कर बद्रीनारायण, या, अमरनाथ आदि के दुर्ग स्थानों में टक्करें मारता और कौन प्रकृति के सुन्दर और मनोरंजक दृश्योंको देखकर ईश्वर की महिमा को स्मरण करने का अवसर प्राप्त करता।

यही नहीं इस यात्रा प्रथाने ही देश के व्यवसाय और शिल्प को जो लाभ पहुंचाया है वडा भारी वाचातीत है, यदि यह यात्रा न होती तो देश में बन्द पानी के छप्पड की भान्ति क्या कुछ दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती।

पाठकवृन्द ! ये लाभ तो सामाजिक और व्यवहारिक दृष्टिसे हुए हैं धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे भी जो लाभ इस यात्रासे हुए है, वे भी बहुमूल्य हैं, यथा यात्रा स्थानों पर देश देश के तथा प्रान्त प्रान्त के अनेक विद्वान् साधु, महात्मा, एकत्रित हो जाते हैं यात्रियों को भिन्न भिन्न देश तथा प्रान्त के विद्वान् महात्माओंके दर्शन एवं उन से वार्तालाप करने का सुअवसर सहज ही से प्राप्त हो जाता था, अर्थात् जो काम लाखों विज्ञापक और ट्रैक्ट बांटने पर भी नहीं हो सकता था, वह एक यात्रा जाने से अनायास हो जाता था। और फिर यह कितनी बडी बात है कि न कोई विज्ञापन छापने पडते हैं और न कोई बुलेटिन निकालने पडते है न अखबारों में शोर मचाना पडता है, यूंही चुप चाप नियत दिन और नियत घडी पर लाखों यात्री एक स्थान पर आकर जमा हो जाते हैं, अहो ! क्या ही बुद्धिमत्ता थी उन महानुभावों को ॥

आत्मिक उन्नति में ये कभी यह प्रथा बडी सहायता देती थी जब यात्री घरसे चलता था तो वह अपने को यात्री समझ कर अपने व्यवहार में

अधिकाधिक सावधान होता था, वह ब्रह्मचर्यव्रत से रहता, पृथ्वी पर सोता, एवं हित, मित तथा मेध्य भोजन करता था। दूसरे की सहायता करना निज कर्त्तव्य धर्म समझता था, और यात्रा स्थान में जाकर कुछ न कुछ दान भी करता था, साथ ही यात्रा के दिना में यात्री लोग जो आपस में बात चीत करते थे, वह भी प्रायः निरी धार्मिक तथा ऐतिहासिक विषयों पर होती थी जिस से यात्रियों को सहज और अनायास ही से अपनी पुरानी सभ्यता और इतिहास का पता लग जाता था।

यह भी ध्यान रहे कि यात्रा स्थानों में जो किसी न किसी महात्मा विशेष के जीवन की घटना विशेष के कारण प्रसिद्ध हैं एक प्रकार के शुद्ध संस्कारों के ओघ का वायु मण्डल सा बन जाता है—जहां जाकर यात्री महानुभाव—यदि वे श्रद्धा भक्ति से परिपूर्ण चित्त लेकर आये है—तो उन संस्कारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते किंबहुना यह यात्रा की प्रथा अनेक रूप में लाभकारी थी।

अब प्रश्न यह है कि इस प्रथा को कैसे लाभदायक बनाया जावे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आज कल यह प्रथा बहुत कुछ बिगड गई है और यात्रा स्थानोंमें बहुत कुछ संशोधन की आवश्यकता है, परन्तु प्रयत्न और पुरुषार्थ प्रत्येक कठिनाई को हटा देता है यह विधाताकी सृष्टि का अटल नियम है। सो यदि हिन्दू जातिके सच्चे हितैषी और दीर्घ दर्शी पुरुषार्थशील विद्वान महाशय एक समिति बनाकर इस काम को करने के लिये कटि बद्ध हो जावे तो कार्य सिद्धि में कुछ भी सन्देह नहीं। मेरे विचार में भारतीय हिन्दूसभा इस काम को करने के लिये सब से बढकर योग्य है।

अब रही यह बात कि किस प्रकार से कार्यारम्भ किया जावे सो भारतीय हिन्दू सभा के अन्तर्गत ऐसे सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली अधिकारी हैं जो स्वयं भली भांति सोच समझ सकते हैं कि कार्यक्रम कैसा क्या होना चाहिए, इत्यादि। परन्तु दो चार बातें जो कार्य कर्ताओं के लिये अवश्य ही विचारणीय है वे ये हैं:—

१- तीर्थ स्थानों को वास्तविक रूप मे तीर्थ स्थान बनाया जावे, अर्थात् वहां पर धर्म और शिष्टाचार का वायुमण्डल उत्पन्न किया जावे।

२- हिन्दुओं की सब सम्प्रदाओं को एक दूसरे के निकट लाने का यत्न किया जावे।

३- हिन्दू जाति के अन्दर से उन कुरीतियों और कुसंस्कारों को जिन्हों ने जाति को छिन्न भिन्न करके विशृङ्खलित तथा निर्बल बनाया हुआ है, दूर किया जावे।

४- संस्कृत और हिन्दी भाषा का प्रचार किया जावे।

५ हिन्दू जात के अन्दर शिल्प विद्याका उत्साह उत्पन्न किया जावे।

६- अच्छे तीर्थस्थानों पर पाठशालाएं, साधु-आश्रम तथा शिल्प शालाएं खोली जावें और उन के चलाने के लिये यात्रियों से धन इकट्ठा किया जावे। इत्यादि।

इस कार्य को पहिले किसी एकस्थान में आरम्भ किया जावे और जब वहां कार्य सिद्ध हो जावे तो फिर क्रमशः अन्यान्य स्थानों में भी उक्त कार्य का प्रारंभ किया जावे और उन स्थानों को अपने हाथ में लिया जावे।

जनवरी १९२६ में सूर्य ग्रहण का मेला होगा जिस में लगभग सात आठ लाख यात्री एकत्रित होंगे कार्यारम्भ करने के लिये यह स्थान सब से

श्रेष्ठ है और हमें पूर्ण विश्वास है कि यहां पर पूर्ण सफलता प्राप्त होगी। यदि भारतीय हिन्दू सभा अभी से इस कार्य को आरम्भ कर देवे।

इस लिये हिन्दू सभा के सभ्यों से प्रार्थना है कि इस पर स्वयं विचार करें और यदि आप भी इन विचारों से सहमत हो तो शीघ्र भारतीय हिन्दू सभा को नितरां प्रेरणा करें कि वह इस कार्य को स्वयं हाथ में ले और अभी से आवश्यक प्रबन्ध के लिये कार्यारम्भ कर दे।

मैं आप को विश्वास कराता हूं कि हिन्दू जाति के उत्थान के लिये जितने भी उपाय आज तक किये गये उन सब से यह कहीं बढ चढ कर लाभ दायक सिद्ध होगा।

हिन्दू जाति सृष्टि के आरम्भ से ही एक धर्मपरायण जाति है अतः इस के उत्थान के लिये ऐसे ही उपाय उपयोग में लाने हितकर है और लाने चाहियें। जिन में कि इस के धर्म भावों पर पूर्ण प्रभाव पडे और यह उपाय इस हेतु से सर्व श्रेष्ठ है।

यज्ञीय पशुहिंसा विचारः।

औन्धनगरे(जि. सातारा)संगमिष्यमाणवैदिकयज्ञसंबंधिशास्त्रार्थचिंतनपरिषदासनमलंकरिष्यमाणानां सभाधिपतीनां सन्निधाने।

कर्नाटकदेशस्थितदक्षिण कन्नडाजिल्हांतर्गतबैदूरुप्रदेशनिवासिनांसनातनधर्मानुयायिनांमहाजनानांविज्ञप्तयः॥ यथाः-

अथ खलु निखिल जगदादिहेतुना, सकलचराचरसृष्टिस्थित्यंतकारिणा, वेदवेदांताद्यनेकशास्त्रप्रतिपादित सच्चिदानंदस्वरूपेण सर्वभूतानुकंपिना, परमात्मनाऽदिपुरुषेणाऽभिव्यक्तेष्वाम्नायेषु तदनुरुद्धस्मृत्यादिशास्त्रेषु च प्रतिपादितो धर्मो वैदिकः। तथा भूतस्य धर्मस्य मूलप्रमाणानि हि स्मृतानि भगवता याज्ञवल्क्येन "श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः॥ सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्"॥(या- स्मृ. १.७) इति। यद्येतत्पंचानां मूलप्रमाणानां श्रुत्यादीनां परस्परविरोधापत्तौ पूर्वपूर्वो बलीयानित्युक्तेरिष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं वेदत्रयीभ्यः श्रुतिभ्यः परं प्रमाणं न विद्यते। परंतु तच्छ्रुति पदवाक्यादेः प्राक्तनाद्यतनाचार्यैर्विद्वद्भिश्चस्वस्वमतानुसारमर्थस्याकृष्टत्वात्सामान्यजनैरतीवदुर्ज्ञेयतापामेस्तद्वेदार्थजिज्ञासुषु केवल मौदासीन्यमेव प्रतिभाति। विपश्चिज्जनानां वादविवादैर्वेदानां तथ्यार्थोऽपि संदिग्धतरोऽवस्थितः। तथापि सर्वभूतानुग्रहीतृपरमदयालु श्रीमद्भगवत आज्ञारूपेषु वेदेषु हिंसाचरणमर्थात्पशुवधो विहित इति समस्तशास्त्रार्थपारावारपारगैर्निर्मलांतःकरणैः संख्यावद्भिरविश्वसनीयः। तथा च श्रूयते- "येन केन प्रकारेण को हि नाम न जीवति?। परेषामुपकारार्थं यज्जीवति स जीवति"। (ऋ वे. अष्ट ८-७. वर्ग १४ परं परिशि- व ६) अनयाज्ञापितं परोपकरणमेव मानुषजन्म साफल्यनिदानम् तदेव परमो धर्मो नान्यत्परपीडनाहिंसनादीति। अयमर्थः स्वयं भगवतोदितोगीतासु- "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः"। (गी. अ. १२.४) इतीतः सर्वभूतहितासक्तिरेव भगवत्स्वरूपप्राप्तित्वात्तदनुलक्षितपरमनिश्रेयससाधनम्- नान्यादित्यवगम्यते। अपि च देवासुरसंपद्विभागावसरे तेनैव तत्रोक्तम्-

"अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शांतिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ १॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता । भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत" ॥ (गी. अ. १२. २, ३) इति ॥ अनेनाहिंसा भूतदयामार्दवमित्यादीनां दैवीसंपत्त्वमित्युक्तार्थः। अतस्तदहिंसाद्यैरेव श्रेयः सिद्धिरर्थाच्चाद्रिरुद्धहिंसानिर्दयताकाठिन्यादीनामासुरसंपत्त्वात्तद्दुराचरणमतोनिरयाप्तिकारणंचेति सूचितम् । तथाचाद्यधर्मशास्त्रप्रवर्तको भगवान्मनुरप्याह—" अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः "॥ (म.स्मृ. अ. १०-६३)इति ॥ हिंसात्यागो, यथार्थाभिधानं, अन्यायेन परधनस्याग्रहणं, विशुद्धिः,इंद्रियसंयम, इत्येवंसामासिकधर्मः समस्तमानवजन्मभिरनुष्ठेयत्वात्स मानुषसामान्यलक्षणम् ।यतोनतद्धर्मो ब्राह्मणादिकेवलवर्णमात्रोपलक्षकः । चातुर्वर्ण्यइति वर्णसमुदायस्मरणात । प्रकरणसामर्थ्यात्संकीर्णानामप्ययंधर्मोवेदितव्यः । ततस्तं विनामानुषत्वमेव न सिध्यतीतिफलितार्थः । तथाहि तेनैव मनुना "यो बंधनवधक्लेशान्प्राणिनां न चिकीर्षति । स सर्वस्यहितप्रेप्सुः सुखमत्यंतमश्नुते " ॥ (अ. ५-४६) "यद्ध्यायति यत्कुरुते धृतिं बध्नाति यत्र च । तदवाप्नोत्ययत्नेन यो हिनस्तिनकिंचन" ॥ (अ. ५-४७) ,,नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित । न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत " ॥ (५-४८) " वर्षेवर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः । मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम् " ॥ (५-५३) इत्याद्यनेकत्र, बंधनादिहिंसाचरणमांसाशनयोर्निषेधोऽहिंसयास्वर्गादिफलोत्कर्षश्चेति सुस्फुटंस्मृतम् । तथैवैतदनुस्मृतं भगवता याज्ञवल्क्येन-"सर्वान्कामानवाप्नोतिहयमेधफलं तथा । गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात " ॥ (या. स्मृ- आचार १८१) इति । एवमादीनि हिंसादूषकाऽहिंसाप्रशंसकानि वचांसि सहस्रशः प्रामाणिकग्रंथेषु सन्त्यपि नात्र तानि पत्रविस्तारभीत्या लिख्यंते। अत्र विषये पुराणेतिहासवेदान्तदर्शनादिप्रामाणिकग्रंथप्रणेत्रा सर्वज्ञेन महर्षिणा भगवता व्यासेन सकलशास्त्रार्थसर्वस्वं सुसंक्षिप्य सत्यतरं यदुक्तम्:—

"परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् " इत्येवं सुपर्यासमासीत्। अतएवाहिंसा परमोधर्मः, सर्वभूतहितासक्तिरेवात्यंतनिश्रेयसनिदानम्, बुद्धिपूर्वक चेतनहिंसनमतीव दुराचरणम् ,समस्तसच्छास्त्रदूषितम्, न तदन्यद्दुष्टतर पापकर्म, तत्कर्तुश्चाऽपि महाघोरनरकंविना नान्यद्गतिरिति, यथामतिविदितशास्त्रार्थाः स्वस्वांतरात्मानुशासिता वयं सुदृढ विश्वसिमः । यद्यपि पुराणादिग्रंथान्तरे सविषयागवर्णनं तत्प्रेरकवाक्यचास्ति,तदर्थवाद स्मकम, रूपकाद्यालंकारिकम् , अन्यार्थकम प्रक्षिप्त वा यथाक्रममूहनीयं सुधीभिः । तस्मात्समांसयज्ञोवेदविद्भिः सदाचारसंपन्नैः सर्वथा दूष्य एव । तथा यज्ञं चिकीर्षुणा यजमानेन श्रीमद्भागवतोक्तिमनुसृत्य पिष्टमयो वा-,"यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि" इति भगवद्वचनेन जपयज्ञस्यैव प्रधानत्वात्तज्जपयज्ञो वा कार्यः । सदयार्द्रांतःकरणा विद्वांसः सभ्या अपि पशुवधादिप्राणिहिंसनस्यानर्थत्त्वं तत्संभाव्यमयंकराघनिचयं च स्वस्वनिष्कल्मषहृदि सम्यग्विमृश्य निरामिषयज्ञमेव पुरस्कुर्युरित्याशास्महे । सकलशास्त्रार्थतत्त्वविदो महांतो भवंतः सभाध्यक्षाश्च अशास्त्रीयं समांसयज्ञं निरस्य "सर्वभूताविरोधः, सर्वजनसम्मतः सकलशास्त्रविहितो निर्दुष्टश्च निर्मांसयज्ञ एवेतः परं सकल वैदिककर्मनिष्ठागारिष्ठशिष्टजनैरादरणीय आचरणीयश्चेति निर्णयेयुः॥ इति

वयं सानुनयम्—

विज्ञापयामहे ॥

पुस्तक परिचय ।

१ हिमगिरि संदेश –(अनुवादक-श्री. हरिशरण श्रीवास्तव्य मराल, मेरठ । प्रकाशक-सरस्वती प्रिंटिंग वर्क्स मेरठ । मू. ।=)

श्री. पाल रिचर्डका नाम पाठक जानते ही हैं। आप यूरपके तत्त्वज्ञानी हिमालयमें तपस्या कर रहे हैं उनके पुस्तकका यह भाषानुवाद है। यह पुस्तक पद्य में होनेसे अधिक रोचक बना है।

२सुबोध संस्कृत- (ले. श्री. बी. बी. कामत, बी. ए. ४४८ रोब्सन रोड, कराची । मू. १) रु.

सुबोध रीतिसे संस्कृत सीखनेकी रीति इस पुस्तक में है। हिंदी, मराठी तथा अंग्रेजी भाषा जो जानते हैं वे इस पुस्तक का अध्ययन कर सकते है। पुस्तक सचित्र होनेसे अधिक चित्ताकर्षक हुआ है। सरकारी विद्याविभागने इस पुस्तक को स्वीकार किया है। इससे इस पुस्तक की उपयुक्तता सिद्ध है।

३ शिल्प सर्वस्व—संपादक व प्रकाशक श्री. पं. चंद्रिका प्रसाद तर्काचार्य कानपुर वा. मूल्य ॥–)

अतिस्वस्त शिल्पविषयका मासिक है।

४ वेदोंपर भयंकर अत्याचार–प्रकाशक श्री. स्वा० सच्चिदानन्द । वेदोंके मंत्रोंके सत्य अर्थ बताने का इसमें प्रयत्न किया गया है।

५ संजीवन-(प्रकाशक बा. भद्रसेन वर्मा संपादक-श्री. चतुरसेन शास्त्री देहली) यह वैद्यक का मासिक पढनेयोग्य लेखोंसे भूषित है।

६ आरोग्यदर्पण—(संपादक-श्री. वैद्य गोपीनाथ गुप्त हलदौर (बिजनौर) वा. मू. २)रु.

आरोग्यशास्त्र विषयक सुबोध लेख इस मासिकमें प्रकाशित होते हैं।

देवलस्मृतिमें कहा प्रायश्चित्त ।

देवलस्मृति में कालमर्यादा, बलात्कार, केवल, सहवास और अगम्यागमनादि सब पातकों का विचार कर उस के लिए भिन्न भिन्न प्रायश्चित्त बताए गए है। जिस प्रकार दूसरे स्मृतिवचन या धर्मग्रंथों की सुसंबद्धता बताने की आवश्यकता रहती है उसी प्रकार इन विधानों को भी सुस्पष्ट करने की आवश्यकता है।

देवलस्मृति के अनुसार एक वर्षतक परधर्मीय रह कर अगम्यागमनादि पातक किए हों तो ऐसे ब्राह्मण की शुद्धि सपराक चांद्रायण से, क्षत्रिय की पादकृच्छ्रयुक्त पराक से, वैश्य की पराकार्ध से और शूद्र की दिनपंचक प्रायश्चित्त से हो सकती है।

यदि उपरोक्त पातकों का आचरण एक वर्ष से अधिक काल तक हुआ हो तो उपरोक्त प्रायश्चित्त और गंगास्नान भी करना चाहिए।

यदि बलात्कार से गोहत्यादि पातक होने के कारण धर्म विछोह हुआ हो तो ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य प्राजापत्य (कृच्छ्र) करें, आहिताग्नि चांद्रायण या पराक करें। यदि इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया हो तो सपराक चांद्रायण करना चाहिए।

शूद्र यदि इस दशा में एक वर्ष रहा हो तो उसे पंद्रह दिनतक माड पीकर रहना चाहिये या चांद्रायण करना चाहिए।

यदि यह अवधि एक वर्ष से अधिक और चार वर्ष से कम हो तो उपरोक्त प्रायश्चित्तों पर से विद्वान् लोग प्रायश्चित्त निश्चित्त करें।

शूद्र यदि छः महिने तक रहा हो तो पराक, तीन महिने रहा हो तो पराकार्ध और एक महिने तक रहा हो तो पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करें।

यदि केवल बलात्कार के कारण दस से बीस वर्ष तक परधर्म में रहना पडा हो और विशेष पातक न हुए हों तो प्राजापत्यद्वय से शुद्धि प्राप्त होती है। यही बात यदि केवल स्वेच्छापूर्वक की गई हो (अर्थात् यदि अपनी इच्छासे म्लेच्छोंके साथ सहवास हुआ हो तो चान्द्रायण प्रायश्चित्त करना चाहिए।म्लेच्छ से व्यभिचार करने वाली स्त्री तीन दिन के पश्चात् शुद्ध होती है परंतु यदि उस स्त्री को गर्भ रहे तो प्रसुति तक वह अशुद्ध रहती है। प्रसूत होकर वह गर्भ दूसरे को दे देवे और कृच्छ्रसांतपन करे; तब उसकी शुद्धि होती है।

यात्रा के समय म्लेच्छों के उपद्रव से अभक्ष्य भक्षण और धर्मविद्रोह हुआ हो तो ब्राह्मण कृच्छ्र प्रायश्चित्त करें क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यथाक्रम चतुर्थभाग कम कम करें।

बताए हुए प्रायश्चित्त संक्षिप्तरूप से समझना अत्यावश्यक है। इस विधि में प्रायः निम्न लिखित प्रायश्चित्तों का ही विशेष उपयोग होता है। वे संक्षेप में इस प्रकार हैं: —

कृच्छ्र (प्राजापत्य) —सात दिन तक उपवास करना अर्थात् उपवासयोग्य पदार्थ अल्प प्रमाण में खाना। या कपिला गाय की धारोष्ण दूध पीना। द्रव्य दान का परिमाण — हरेक कृच्छ्र के लिए एक रुपया या उतना न बन सके तो एक चवन्नी दान करनी चाहिए।

ग्रंथकारों ने कहा है कि इस द्रव्य दान के बदले दस बारह कोस दूर किसी तीर्थ का या पवित्र स्थल का दर्शन करने से भी काम निकल सकता है।

तीन दिन सुबह और तीन दिन शाम को भोजन करने से तीन दिन अयाचितवृत्ति से रहने से और तीन दिन उपवास करने से भी कृच्छ्र होता है।

पादकृच्छ्र—एक भुक्त नक्त, और एक दिन अयाचित वृत्ति से याने विना मांगे जो मिले उस पर रहने से या उपवास करने से पादकृच्छ्र होता है। यह व्रत सब सहलता से कर सकते हैं। इस लिए सब इसे करें।

चांद्रायण—

एकैकं वर्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत्।
इंदुक्षये न भुंजीत एष चांद्रायणो विधिः॥

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा के दिन एक, द्वितीया को दो, इस क्रम से बढाते हुए पौर्णिमाके दिन पंद्रह ग्रास भोजन करना चाहिए और कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा के दिन चौदह द्वितीया को तेरह, इस क्रम से कम करते हुए अमावास्याके दिन पूर्ण उपवास करना चाहिए।

अर्थात् एक महीने मे दो सौ चालीस ग्रास भोजन करना चाहिए। प्रति दिन आठ ग्रास भोजन किया, या एक दिन सोलह ग्रास लेकर दूसरे दिन उपवास किया तौभी चल सकता है। इस में कृच्छ्र से चौगुना द्रव्य दान करना चाहिए।

पराक —बारह दिन उपवास करने से पराक नामक व्रत होता है। इस में कृच्छ्र से दुगुना द्रव्य दान करना चाहिए।

वीर्य रक्षाके लिये

भुजङ्गासन [सर्पासन]

(ले०—श्री. पं. प्रियरत्न विद्यार्थी)

यह सर्पासन चिकित्सा सम्बन्धि आसनों में वीर्य्यरक्षण के लिये एक मुख्य आसन है अर्थात यदि मेरे बताए एकेले इस सर्पासन को ही निरन्तर दोनों समय करें तो "स्वप्नदोष" रोग सर्वथा नष्ट हो जावे । विधि यह है कि भूमिपर ओन्धा लेट जांव और दोनों हाथ, हनु (ठोडी), छाती, उपस्थेन्द्रिय, दोनों जानु (घुटने,) दोनो पैरों के पंजे भूमिको स्पर्श करें या यों समझिये कि शरीर का भार इन नव अङ्गोंपर होना चाहिये "एडी मिली हों हाथ स्कन्धों के पास रखे हों फिर ठोडी को भूमिसे ऊपर उठावें और शनैः शनैः जहां तक आगे के अङ्गोंको भूमिसे ऊपर उठासकें उठावें प्रत्युत हाथों पर भार न पडने पावे, ऐसा करते हुए एक आभ्यन्तर वृत्ति प्राणायाम (श्वासको भीतर रोकना) करें यह भुजङ्गासन का प्रथमप्रकार है फिर देखो-

(२) इस के अनन्तर पूर्ववत् नवाङ्ग लेटे हुए दोनों हाथ पृष्ठ के ऊपर मिलाकर रखें एवं पूर्ववत् आभ्यन्तर प्राणायाम करें और हनुसे लेकर अङ्गको जितना ऊपर उठासकें शनैः शनैः उठावें, प्रथम प्रकार में और इस में भेद इतना ही है कि हाथों को पृष्ठ के ऊपर मिला कर रखना और सब पूर्व के समान है ॥

(३) इसके पश्चात प्रथम प्रकार का भुजङ्गासन करके दोनों जानु (घुटने) भी ऊपर उठालेवें फिर प्रथमप्रकार के समान सब कुछ करें प्रथम और इस तृतीय प्रकार में भेद इतना ही है कि इस में दोनों जानु ऊपर उठाने होते हैं ॥

(४) तत्पश्चात् द्वितीय प्रकार के समान दोनों हाथ ऊपर उठाकर पृष्ठ पर मिलादें बस तृतीय प्रकार ओर चतुर्थ पकार में केवल इतनाही अन्तर है और सब समान है ॥

एवं इस प्रकार का भुजङ्गासन जो चार प्राणायामों मे होगा जिस में ५ मिनिट के लगभग लगेंगी सायं प्रातः दोनों समय जो कोई इसका अनुष्ठान करेगा चाहे वह पुरुष अन्य चिकित्सा सम्बन्धी आसनों को न भी करे पर अति शीघ्र स्वप्नदोष रोग से मुक्ति पावेगा। कुछ दिवस इसही एकेले को करते हुए अभ्यासानुभव से परीक्षा कर देखें ।

देवल स्मृतिका विचार।

वैदिक धर्मके इस अंकमें देवलस्मृतिका पतितोंकी शुद्धि करनेका प्रकरण दिया है। पाठक इस लेखको विचार की दृष्टिसे पढें। इस स्मृतिमें म्लेच्छों द्वारा धर्मांतर किये गये तथा अन्य रीतिसे बलात्कारपूर्वक भ्रष्ट किये हुए पतितोंकी शुद्धि करनेकी विधि दियी हुई है। इसमें-

(१) तत्काल धर्मभ्रष्ट हुए अर्थात् एक दो या दस पांच दिन तक अन्य धर्ममें रहे हुए लोग,

(२) मास दो माससे सालभरतक अन्यधर्ममें रहे हुए,

(३) सालसे अधिक देर तक अन्य धर्ममें गये और वहां रहे हुए लोग,

(४) स्वेच्छासे अन्य धर्ममें प्रविष्ट हुए,

(५) बलात्कार से अन्य मतमें गये हुए,

(६) अन्य धर्ममें जाकर उनके संगमें रहकर खान पान स्त्रीसंग आदि किये हुए लोग,

(७) अभक्ष्य भक्षण तथा अपेय पान किये या कराये हुए जन,

(८) स्त्रियोंके बलात्कार से धर्मभ्रष्ट होने तथा उनके गर्भवती होनेपर,

(९) बाल, तरुण, वृद्ध तथा बाला, तरुणी और वृद्धाओंके स्वेच्छासे अथवा अनिच्छा से धर्मांतर करनेपर-

जो प्रायश्चित्त उनको देना उस समय के धर्माचार्योंने मंजूर किया था, उसीका सूक्ष्मसे सूक्ष्म विचार इस देवलस्मृतिमें दिखाई देता है।

स्मृतिका आचार कालानुरूप बदलता जाता है वह श्रुतिके आदेशोंके समान त्रिकाल में स्थिर नहीं रह सकता। यह बात सब विद्वान जानते ही हैं। इस नियमको ध्यानमें धरनेसे देवलस्मृतिमें वर्णन किये हुए प्रायश्चित्त त्रिकालाबाधित नहीं हो सकते। उस समयके धर्माचार्योंने अपनी अवस्था, समाज स्थिति, तथा देशकी और अन्य धर्मीयोंकी परिस्थिति के अनुसार अर्थात् इन सब बातों का विचार करके अपने समयके लिये ये प्रायश्चित्त बनाये थे। इस समय की सब अवस्था और परिस्थिति पूर्णरूपसे बदल गई है, इस कारण इस समयके प्रायश्चित्त भी भिन्न होंगे। अर्थात् देवलस्मृतिके प्रायश्चित्तोंकी अपेक्षा सौम्य अथवा तीव्र होंगे। यह सिद्ध करने के लिये प्रमाणान्तर की आवश्यकता नहीं है।

इस देवल स्मृतिमें जो पतितोंका वर्णन किया है, प्रायःवेही प्रकार आज भी हो रहे है। आज भी लडके और लडकियों को जबरदस्ती म्लेच्छ लोग ले जा रहे हैं। स्त्रियोंपर अत्याचार हो रहे हैं। तरुणों को लुभाकर धर्मांतर में फसा रहे हैं, खानपान आदिका नियम बिलकुल रहा नहीं है।

देवलस्मृतिके समय स्वधर्मी राजाओंका राज्य होनेसे राजदर्बार में स्वधर्म का प्रवेश था आजकी स्थिति उससे भिन्न है। राजदर्बारमें स्वधर्म के प्रवेश के लिये कोई स्थान नहीं है और इस कारण बडी कष्टतर परिस्थिति हुई है।

म्लेच्छों की चालाखियां बढ गई हैं और स्वधर्मियों की मर्दानी कम हुई है। पहिले जो लोग स्वसंरक्षणमें समर्थ थे वेही आज अपनी रक्षा के लिये दूसरों के मुंह की ओर देख रहे हैं।

इससे पाठक जान सकते हैं कि देवलस्मृति के समय की अपेक्षा इस समय के प्रायश्चित्त स्वल्प और सुगम होने चाहिये। यह प्रायश्चित्तोंका विषय समाज के धुरंधर विद्वान जिनको अपने समाज की रक्षा करने की चिन्ता हो वेही निश्चित कर सकते हैं।

देवलस्मृतिके समयके विद्वान अपने संगठन की रक्षा, अपने सामाजिक शक्तिकी रक्षा तथा अपने धर्म की रक्षा करनेके उद्देश्यसे जो जो प्रयत्न कर रहे थे उनका ज्ञान इस स्मृतिको देखनेसे हो सकता है। वे प्राचीन कालके स्मृतिकार आजकल के कूपमंडूक विद्वान पंडितोंके समान अपने ही समाजका घात करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होते थे। समाजका संख्याबल भी एक बल होता है। किसी भी समाजको यदि जीना है तो अपने संख्या बलका उसे अवश्य विचार करना चाहिये। क्या इस समयके विद्वान अपने सामाजिक संख्याबलका विचार कर रहे हैं? यदि करते तो शुद्धि और संगठन तथा पतितोद्धार के विषयमें इतने उदासीन न रहते। अतः इस देवलस्मृतिको यहां मुद्रित करके हम अपने धर्म भाईयोंका मन इस बातकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वे अपने स्मृतिकारोंके आशय को देखें, उनके उदार भावों का अवलोकन करें, उनके संगठनके विचारोंका मनन करें और इस समयमें जो अपने समाजपर आपत्ति आरही है उसको दूर करनेके लिये शुद्धि संगठन और पतितोद्धार के कार्य करके अपने समाजका बल बढावें।

देवलस्मृतिः।

सिन्धुतीरे सुखासीनं देवलं मुनिसत्तमम्।
समेत्य मुनयः सर्वे इदं वचनमब्रुवन् ॥१॥

(सिन्धुतीरे)सिन्धु नदी के तीर पर (सुखासीनं) सुखसे बैठे हुए (मुनिसत्तमम्) मुनिश्रेष्ठ (देवलं) देवल के (समेत्य) पास जाकर (सर्वे मुनयः) सब मुनियों ने (इदं वचनं) ये शब्द (अब्रुवन्) कहे —

भगवन्म्लेच्छनीता हि कथं शुद्धिमवाप्नुयुः।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैवानुपूर्वशः ॥२॥

(भगवन्) भगवन् (म्लेच्छनीता हि) म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट किए गए (ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र (अनुपूर्वशः) क्रमसे (कथं) कैसे (शुद्धिं) शुद्ध (अवाप्नुयुः) हो सकेंगे।

कथं स्नानं कथं शौचं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।
किमाचारा भवेयुस्ते तदाचक्ष्व सविस्तरम् ॥ ३ ॥

(कथं स्नानं) वे किस प्रकार स्नान करें? (कथं शौचं) किस प्रकार शुद्ध हों? (कथं) किस प्रकार (प्रायश्चित्तं) उन्हें प्रायश्चित (भवेत) दिया जावे? (किम्)कौनसे(ते आचाराः)आचारों का वे(भवेयुः) पालन करें? (तत्) वह (सविस्तरम्) विस्तारपूर्वक (आचक्ष्व) बताइए।

देवल उवाच—

त्रिशंकुं वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम्।

उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीटकम् ॥४॥
प्रायश्चित्तं प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महर्षयः ॥५॥

(महानद्या उत्तरेण) उत्तर में महानदीको (दक्षिणेन तु) दक्षिण में (कीटकम्) मगध देशको (सर्वं) इस सब (द्वादशयोजनं) बारहयोजन विस्तीर्ण (त्रिशंकुं) त्रिशंकु देश (वर्जयेत्) छोड़कर (विस्तरेण) विस्तारपूर्वक (प्रायश्चित्तं) मैं प्रायश्चित्त (प्रवक्ष्यामि) बताता हूँ।

मृतसूते तु दासीनां पत्नीनां चानुलोमिनाम् ।
स्वामितुल्यं भवेच्छौचं मृते स्वामिनि यौनिकम् ॥६॥

(अनुलोमिनाम्) अनुलोमरीति से की हुई (पत्नीनाम्) स्त्रियोंको (दासीनां च) और दासियोंको (स्वामितुल्यं) स्वामी के समान (मृतसूते शौचं भवेत्) जाताशौच और मृताशौच रहना चाहिए। (स्वामिनि मृते) स्वामी के मृत होने पर (यौनिकं) कुटुंबियों के समान अशौच रहना चाहिए।

अपेयं येन संपीतमभक्ष्यं चापि भक्षितम् ।
म्लेच्छैर्नीतेन विप्रेण अगम्यागमनं कृतम् ॥ ७ ॥
तस्य शुद्धिं प्रवक्ष्यामि यावदेकं तु वत्सरं ।

(म्लेच्छैर्नीतेन) म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट किए हुए (येन विप्रेण) जिस विप्रसे (यावदेकं तु वत्सरं) एक साल तक (अपेयं संपीतं) अपेय पान हुआ हो (अभक्ष्यं भक्षितं च) अभक्ष्य भक्षण हुआ हो; (अगम्यागमनं कृतं) और अगम्यगमन हुआ हो (तस्य) उसे मैं (शुद्धिं) प्रायश्चित्त (प्रवक्ष्यामि) बताता हूँ।

चांद्रायणं तु विप्रस्य सपराकं प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥
पराकमेकं क्षत्रस्य पादकृच्छ्रेण संयुतं ।
पराकार्धं तु वैश्यस्य शूद्रस्य दिनपंचकम् ॥ ९ ॥

(विप्रस्य तु) ब्राह्मणों के लिए (सपराकं चांद्रायणं) सपराक चांद्रायण (प्रकीर्तितम्) बताया गया है; (क्षत्रस्य) क्षत्रियों के लिए (पादकृच्छ्रेण संयुतं) पादकृच्छ्र के साथ (पराकं) पराक बताया गया है; (वैश्यस्य तु) वैश्यों को (पराकार्धं) अर्ध पराक (शूद्रस्य) और शूद्रों को (दिनपंचकं) पांचदिन का उपवास बताया गया है।

नखलोमविहीनानां प्रायश्चित्तं प्रदापयेत् ।
चतुर्णामपिवर्णानामन्यथाऽशुद्धिरस्ति हि ॥१०॥

(नखलोमविहीनानां) नख और केश निकाले हुए लोगों को (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (प्रदापयेत्) दिया जावे, (अन्यथा) अन्यथा (चतुर्णां वर्णानामपि) चारों वर्ण के लोग (अशुद्धिरस्ति हि) अशुद्ध ही रहते हैं।

प्रायश्चित्तविहीनं तु यदा तेषां कलेवरम् ।
कर्तव्यस्तत्र संस्कारो मेखलादण्डवर्जितः ॥११॥

(यदा) यदि (तेषां कलेवरं) भ्रष्ट मनुष्योंका शरीर (प्रायश्चित्तविहीनं) बिना प्रायश्चित्त के मृत हुआ हो तो (तत्र) उनके (मेखलादण्डवर्जितः) मेखलादण्डवर्जित (संस्कारः कर्तव्यः) संस्कार किए जावे।

म्लेच्छैर्नीतेन शूद्रैर्वा हारिते दण्डमेखले ।
संस्कारप्रमुखं तस्य सर्वं कार्यं यथाविधि ॥१२॥

(म्लेच्छैर्नीतेन शूद्रैर्वा) म्लेच्छभ्रष्ट या शूद्र (दण्डमेखले हारिते) यदि दण्डमेखला ले जावे तो (तस्य) उसके (यथाविधि) यथाशास्त्र (सर्वं संस्कारप्रमुखं कार्यं) सब संस्कार किए जावें।

संस्कारान्ते च विप्राणां दानं धेनुश्च दक्षिणा ।
दातव्यं शुद्धिमिच्छद्भिरश्वगोभूमिकांचनम् ॥ १३ ॥

(संस्कारान्ते) संस्कार हो जाने पर (विप्राणां) विप्रों को (दानं धेनुश्च दक्षिणा) दान, धेनु और दक्षिणा दी जावे। (शुद्धिमिच्छद्भिः) शुद्धिकी इच्छा करने वाले (अश्वगोभूमिकांचनं) अश्व, गाय, भूमि और कांचन का (दातव्यं) दान करें।

तद्दासौ तु कुटुंबानां पङ्क्तिं प्राप्नोति नान्यथा ।
स्वभार्यां च यथान्यायं गच्छन्नेव विशुध्यति ॥ १४॥

(तद्दासौ) फिर वह (कुटुंबानां) कुटुंबियों की (पंक्तिं प्राप्नोति) पंक्ति में बैठने के योग्य होता है । (अन्यथा न) अन्यथा नहीं । (स्वभार्यां) अपनी स्त्री के पास (यथान्यायं गच्छन्नेव) यथाशास्त्र गमन करने से ही (विशुध्यति) शुद्धि होती है ।

अथ संवत्सरादूर्ध्वं म्लेच्छैर्नीतो यदा भवेत् ।
प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे गंगास्नानेन शुध्यति ॥ १५॥

(अथ यदा) यदि (संवत्सरादूर्ध्वं) एक वर्ष से अधिक दिनतक (म्लेच्छैर्नीतो भवेत) म्लेच्छ ने भगाया हो तो (प्रायश्चित्ते तु संचीर्णे) उपरोक्त प्रकार से प्रायश्चित्त लेकर (गंगास्नानेन) गंगास्नान करने से (शुध्यति) शुद्धि होती है ।

सिंधुसौवीरसौराष्ट्रं तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
कलिंगकौङ्कणान्वंगान् गत्वा संस्कारमर्हति ॥ १६॥

(सिंधुसौवीर सौराष्ट्रं) सिंधु, सौवीर और सौराष्ट्र देशों में (तथा) उसी प्रकार (प्रत्यन्तवासिनः) आसपास के लोगोंके देशमें (कलिंग कौङ्कणान्वंगान्) कलिंग, को कण, और अंग देशों में (गत्वा) जाने से (संस्कारमर्हति) मनुष्य को शुद्धि के लिए संस्कार की अपेक्षा रहती है ।

बलाद्दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः ।
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम् ॥ १७॥
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनं ।
खरोष्ट्रविड्वराहाणामामिषस्य च भक्षणं ॥ १८॥
तत्स्त्रीणां च तथा संगं ताभिश्च सह भोजनम् ।
मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापत्यं विशोधनम् ॥ १९॥

(ये) जो (म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः) म्लेच्छोंद्वारा, चाण्डालों द्वारा या शूद्रों द्वारा (बलाद्दासीकृता) जबरदस्ती से दास बनाए गए हैं, (गवादि प्राणहिंसनम्) गाय आदि की हिंसा के समान (अशुभं कर्म कारिताः) अपवित्र कार्य जिनसे कराए गए हैं; (उच्छिष्टमार्जनं चैव) जिन्हें झूठा उठाना पडा हो (तथा तस्यैव भोजनं) वैसे ही झूठा खाना पडा हो ; (खरोष्ट्रविड्वराहाणां) और गधा, उँट, सूअर के (आमिषस्य) मांसका (भक्षणं) भक्षण करना पडा हो, (तथा तत्स्त्रीणां संगं च) और उनकी स्त्रियों का संग हो (ताभिश्च सहभोजनं) और उन स्त्रियों के साथ सहभोजन करना पडा हो (मासोषिते द्विजातौ तु)और यदि ब्राह्मणको इस प्रकार एक मास व्यतीत करना पडा हो तो (प्राजापत्यं विशोधनं) उसकी प्राजापत्य प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है ।

चांद्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत् ।
चांद्रायणं पराकं च चरेत्संवत्सरोषितः॥ २०॥

(आहिताग्नेः) आहिताग्निको (चांद्रायणं) चांद्रायण (अथवा पराकं) या पराक (भवेत) करना चाहिए; (संवत्सरोषितः) परंतु जिसे एक वर्ष इस प्रकार व्यतीत करना पडा हो वह (चांद्रायणं पराकं च)चांद्रायण और पराक (चरेत्) करे ।

संवत्सरोषितः शूद्रो मासार्धं यावकं पिबेत ।
मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छ्रपादेन शुध्यति ॥ २१ ॥

(संवत्सरोषितः) जिसे एक वर्ष तक परधर्म में रहना पडा हो (शूद्रः) वह शूद्र (मासार्धं) पन्द्रह दिन तक (यावकं) गेहूँ की माड (पिबेत्) पीकर रहे ; (मासमात्रोषितः शूद्रः) परंतु जिस शूद्रको एक मास तक ही रहना पडा हो वह (कृच्छ्रपादेन) कृच्छ्रपाद प्रायश्चित्त से (शुध्यति) शुद्ध होता है ।

ऊर्ध्वं संवत्सरात्कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः ।
संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद्भावमधिगच्छति ॥ २२॥

(द्विजोत्तमैः)इस पर से विद्वान लोग (संवत्सरादूर्ध्वं) एक वर्ष से अधिक परधर्म में रहने वालों के

(प्रायश्चित्तं कल्पयं) प्रायश्चित्त की कल्पना करे; (चतुर्भिः संवत्सरैः) इस प्रकार चार वर्ष तक रहने से (तद्भावमधिगच्छति) मनुष्य परधर्मियों के भाव अपनाता है ।

ह्रासो न विद्यते यस्य प्रायश्चित्तं दुरात्मनः ।
गुह्यकक्षशिरोभ्रूणां कर्तव्य कवापनम् ॥ २३ ॥

(यस्य दुरात्मनः) जिस पतित मनुष्य का (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित होता है (ह्रासो न विद्यते) उसके जीव का पतन नहीं होता । (गुह्य कक्षशिरः भ्रूणा,) गुह्य बगल शिर और भ्रू के (केशवापनं कर्तव्यम्) बाल निकालना चाहिये ।

प्रायश्चित्तं समारभ्य प्रायश्चित्तं तु कारयेत् ।
स्नानं त्रिकालं कुर्वीत धौतवासा जितेन्द्रियः ॥ २४ ॥

(प्रायश्चित्तं समारभ्य) प्रायश्चित्त के प्रारंभ होने से (प्रायश्चित्तं तु कारयेत्) उसके सब विधि प्रायश्चित्त लेनेवाले से कराए जावें । (कभी प्रायश्चित्त विधि कई दिनों तक चलती है । उस के लिये यह निर्देश है । (धौत वासा जितेन्द्रियः त्रिवारं स्नानं प्रकुर्वीत) प्रतिदिन तीन बार स्नान करके धोए हुए वस्त्र धारण करना चाहिये और इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिए ।

कुशहस्तः सत्यवक्ता देवलेन ह्युदाहृतम् ।
वत्सरं वत्सरार्धं वा मासं मासार्धमेव वा ॥ २५ ॥
बलान्म्लेच्छैस्तु यो नीतस्तस्य शुद्धिस्तु कीदृशी ।

(देवलेन ह्युदाहृतम्) देवलऋषि का कहना है कि (कुशहस्तः) प्रायश्चित्त लेने वाला हाथ में दर्भ ले (सत्यवक्ता) और सत्य बोले ।

(यो) जो (वत्सरं) एक वर्षतक (वत्सरार्धम्,) आधे वर्ष तक (मासं) महीने तक (मासार्धमेव वा) या आधे महीने तक (बलात्) जबरदस्ती के कारण (म्लेच्छैः नीतः) म्लेच्छ भ्रष्ट हो (तस्य) उसकी (शुद्धिस्तु) शुद्धि (कीदृशी) किस प्रकार की जावे ।

संवत्सरोषिते शूद्रे शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु ॥ २६ ॥
पराकं वत्सरार्धे च पराकार्धं त्रिमासिके ।
मासिके पादकृच्छ्रश्च नखलोमविवर्जितः ॥ २७ ॥

(संवत्सरोषिते शूद्रे) यदि शूद्र एक साल तक भ्रष्ट रहा हो तो (चान्द्रायणेन शुद्धिस्तु) उसकी चांद्रायण से शुद्धि होती है । (वत्सरार्धे च, यदि अर्ध-वर्ष तक रहा हो तो (पराकं) पराक (त्रिमासिके पराकार्धं) तीन महीने तक रहा हो तो आधा पराक (मासिके पादकृच्छ्रश्च) और महीने तक रहा हो तो पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिए । (नखलोमविवर्जितः) नख और केश सभी को निकालना चाहिये ।

पादोनं क्षत्रियस्योक्तमर्धं वैश्यस्य दापयेत् ।
प्रायश्चित्तं द्विजस्योक्त पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥ २८ ॥

(क्षत्रियस्य पादोनमुक्तं) क्षत्रियों को इससे एक चतुर्थांश कम प्रायश्चित्त बताया गया है । (वैश्यस्य अर्धं दापयेत्) वैश्य को इसका आधा प्रायश्चित्त दिया जावे । (द्विजस्योक्तं) ब्राह्मण को बताए हुए (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त का (पादं) चतुर्थ भाग (शूद्रस्य) शूद्र को (दापयेत) दिया जावे ।

प्रायश्चित्तावसाने तु दोग्ध्री गौ दक्षिणा मता ।
तथाऽसौ कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टो न दुष्यति ॥ २९ ॥

(प्रायश्चित्तावसाने तु) प्रायश्चित्त समाप्त होनेपर (दोग्ध्री गौ) दूध देनेवाली गाय (दक्षिणा मता) दक्षिणा रूप दी जावे । (तथाऽसौ) फिर वह (कुटुम्बान्ते ह्युपविष्टे) कुटुम्ब में जाकर रहे तो (न दुष्यति) किसीकोभी उसके कारण दोष नहीं लगता ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यून षोडशः ।
प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ३० ॥

(यस्य अशीतिः वर्षाणि) जो अस्सी सालका हो और ([illegible]) और सोलह वर्ष से छोटे

लडके को (स्त्रियां रोगिण एव च) स्त्रियों और रोगियों को (प्रायश्चित्तार्धमर्हन्ति) आधा प्रायश्चित्त दिया जावे ।

अनेकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च।

प्रायश्चित्तं चरेद्भ्राता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः ॥३१॥

(अनेकादशवर्षस्य) ग्यारह साल से कम (पंचवर्षात् परस्य च) और पांच वर्ष से बड़े लडके का (प्रायश्चित्तं) प्रायश्चित्त (पिता भ्राता वा अन्योऽपि बान्धवः) पिता भाई या अन्य पालक (चरेत्) कर सकता है।

स्वयं व्रतं चरेत्सर्वमन्यथा नैव शुध्यति ।

तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ॥ ३२ ॥

इ के सिवा दूसरों को (सर्वं व्रतं) सब व्रत का (स्वयं) स्वयं (चरेत्) आचरण करना चाहिए; (अन्यथा) नहीं तो (नैव शुध्यति) शुद्धि नहीं होती । (तिल होमं)तिल होम (प्रकुर्वीत) करना चाहिए; (अतन्द्रितः) और आलस्यरहित होकर (जपं कुर्यात्) जप करना चाहिए ।

संलापस्पर्शनिःश्वाससहयानासनाशनात् ।

याजनाध्यापनाद्यौनात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥ ३३॥

(संलापात्) संभाषण से (स्पर्शात्) स्पर्श से (निश्वासात्) निश्वास से (सहयानात्) साथ घूमने से (आसनात्) एक साथ बैठने से (अशनात्)एकत्र भोजन से (याजनात्) याजनसे (अध्यापनात्) सिखाने से (यौनात्) और योनिसंबंध से (नृणां) मनुष्यों के (पापं) पाप (संक्रमते) एक दूसरे को लगते हैं ।

याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् ।

कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः॥ ३४॥

(पतितेन) पतित के साथ (याजनं) धर्मविधि (योनिसंबंधम्) विवाह (स्वाध्यायम्) अध्ययन (सहभोजनं) सह भोजन (कृत्वा) करने से (सद्यः पतत्येव) मनुष्यका त्वरित पतन होता है । (न संशयः) इसमें कुछभी संशय नहीं ।

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाऽऽचरन् ।

याजनासनयज्ञादि कुर्वाणः सार्वकालिकम् ॥३५॥

(संवत्सरेण) एक वर्ष तक (पतितेन सह) पतितके साथ (आचरन्) रहकर (याजनासनयज्ञादि) याजन, साथ बैठना, यज्ञ आदि (सार्वकालिकं) सब कालिक कर्म (कुर्वाणः) करने से (पतति) मनुष्य पतित होता है ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तमिदं शुभम् ।

स्त्रीणां म्लेच्छैश्च नीतानां बलात्संवेशने क्वचित् ॥३६॥

(अतःपरं) अब आगे (क्वचित बलात्संवेशने म्लेच्छैः नीतानां स्त्रीणां) क्वचित बलात्कार से म्लेच्छों द्वारा भ्रष्ट की हुई स्त्रियों की (इदं शुभं प्रायश्चित्तं) शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त (प्रवक्ष्यामि) बताता हूं ।

ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा नीता यदाऽन्त्यजैः।

ब्राह्मण्यः कीदृशं भ्राय्यं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥३७॥

(यदा) यदि (अन्त्यजैः) अन्त्यज आदि लोगों से (ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा)ब्राह्मण स्त्री, क्षत्रिय स्त्री, वैश्य स्त्री और शूद्र स्त्री (नीता) भ्रष्ट की गई हों तो (ब्राह्मण्यः)ब्राह्मण स्त्री के लिए(कीदृशं) कौनसा (भ्राय्यं प्रायश्चित्तं) योग्य प्रायश्चित्त (विधीयते) होगा ।

ब्राह्मणी भोजयेन्म्लेच्छमभक्ष्यं भक्षयेद्यदि ।

पराकेण ततः शुद्धिः पादेनोत्तरतोत्तरान् ॥ ३८ ॥

(यदि) यदि (ब्राह्मणी) ब्राह्मण स्त्री (म्लेच्छं) म्लेच्छ को (भोजयेत्) परसे (अभक्ष्यं च) और अभक्ष्य (भक्षयेत्) भक्षण करे (ततः) तो (पराकेण) पराक से (शुद्धिः) उसकी शुद्धि होती है । (पादेनोत्तरतोत्तरान) क्षत्रिय वैश्य और शूद्र स्त्रियों की शुद्धि के लिए क्रमशः चतुर्थ भाग प्रायश्चित्त कम किया जावे ।

न कृतं मैथुनं तासिरभक्ष्यं नैव भक्षितम् ।
शुद्धिस्तदा त्रिरात्रेण म्लेच्छान्ने नैव भक्षिते ॥ ३९॥

(म्लेच्छान्ने नैव भक्षिते) यदि केवल म्लेच्छ अन्न-भक्षण न हुआ हो किंतु (ताभिः) उनसे (मैथुनं न कृतं) मैथुन न हुआ हो (अभक्ष्यं न नैव भक्षितम्) और अभक्ष्य भक्षण न हुआ हो (तदा) तो (त्रिरात्रेण) तीन रात व्रतस्थ रहने से (शुद्धिः) शुद्धि होती है ।

रजस्वला यदा स्पृष्टा म्लेच्छेनान्येन वा पुनः ।
त्रिरात्रमुषिता स्नात्वा पंचगव्येन शुध्यति ॥ ४० ॥

(यदा) यदि (म्लेच्छेनान्येन वा पुनः) म्लेच्छ या और किसी के द्वारा (रजस्वला स्पृष्टा) रजस्वला स्पृष्ट हो तो (त्रिरात्रमुषिता) तीन रात तक अलग रह (स्नात्वा) स्नान कर (पंचगव्येन शुध्यति) पंचगव्य लेने से शुद्ध होती है ।

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा ।
त्रिरात्रेण विशुद्धिः स्याद्देवलस्य वचो यथा ॥ ४१ ॥

(ब्राह्मणी तथा क्षत्रिया रजस्वला) रजस्वला चाहे वे ब्राह्मणी हों या क्षत्रिया (अन्योन्यं स्पृष्ट्वा) एक दूसरी को स्पर्श करने से वे (त्रिरात्रेण) तीन रात्रि के उपरान्त (विशुद्धिः स्यात्) शुद्ध होती हैं ; (यथा देवलस्य वचः) जैसा कि देवल ऋषिने कहा है ।

स्पृष्ट्वा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा ।
पंचरात्रं निराहारं पंचगव्येन शुध्यति ॥ ४२ ॥

यदि (ब्राह्मणी तथा शूद्रजा) ब्राह्मणी और शूद्र स्त्री (रजस्वला) रजस्वला होकर (अन्योन्यं स्पृष्ट्वा) एक दूसरी को छूलें तो (निराहारं पंचरात्रं) वे पांच रात्रि तक निराहार रहकर (पंचगव्येन शुध्यति) पंचगव्य लेनेसे शुद्ध होती हैं ।

ब्राह्मण्यनशनं कुर्यात् क्षत्रिया स्नानमाचरेत् ।
सचैलं वैश्य जातीनां नक्तं शूद्रे विनिर्दिशेत् ॥ ४३ ॥

(ब्राह्मणी) ब्राह्मण स्त्री (अनशनं कुर्यात्) उपवास करे, (क्षत्रिया) क्षत्रिय स्त्री (स्नानमाचरेत्) स्नान करे, (वैश्यजातीनां सचैलं शूद्रे नक्तं विनिर्दिशेत्) वैश्य स्त्री सचैल स्नान करे और शूद्र नक्तव्रत करे ।

म्लेच्छान्नं म्लेच्छसंस्पर्शो म्लेच्छेन सह संस्थितिः ।
वत्सरं वत्सरादूर्ध्वं त्रिरात्रेण विशुध्यति ॥ ४४ ॥

यदि (वत्सरं) एक वर्ष तक (वत्सरादूर्ध्वं) या एक वर्ष से अधिक (म्लेच्छान्नं) म्लेच्छान्न भक्षण (म्लेच्छसंस्पर्शो) म्लेच्छों का संस्पर्श (म्लेच्छेन सह संस्थितिः) और म्लेच्छों के साथ वास हुआ हो तो (त्रिरात्रेण) तीन रात्रि में (शुध्यति) उसकी शुद्धि होती है ।

म्लेच्छैर्हृतानां चौरैर्वा कान्तारेषु प्रवासिनाम् ।
भुक्त्वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा क्षुधार्तेन भयेन वा ॥४५॥
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः ।
कृच्छ्रमेकं चरेद्विप्रस्तदर्धं क्षत्रियश्चरेत् ।
पादोनं च चरेद्वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति ॥ ४६ ॥

(कान्तारेषु) वन में (म्लेच्छैः चोरैर्वा) म्लेच्छ या चोर (हृतानां प्रवासिनां) जिन्हें पकड़ ले गए हों उन्होंने यदि (क्षुधार्तेन) क्षुधा के कारण (भयेन वा) या भयसे (भक्ष्यमभक्ष्यं भुक्त्वा) भक्ष्याभक्ष्य भोजन किया हो तो (पुनः स्वकं देशं प्राप्य) फिरसे अपने देश में आकर (चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः) उनके-वे किसी भी वर्ण के हों-पाप की निष्कृति होती है । (विप्रः) विप्रको (एकं कृच्छ्रं चरेत्) कृच्छ्र का आचरण करना चाहिए; (क्षत्रियः तदर्धं चरेत) क्षत्रिय आधा कृच्छ्र करे (वैश्यः पादोनं चरेत) वैश्य उससे चतुर्थ भाग कम करे; (शूद्रः पादेन शुध्यति) कृच्छ्रके चतुर्थ भागसे शूद्र की शुद्धि होती है ।

गृहीता स्त्री बलादेव म्लेच्छैर्गुर्वी कृता यदि ।
गुर्वी न शुद्धिमाप्नोति त्रिरात्रेणेतरा शुचिः ॥ ४७ ॥

(यदि म्लेच्छैः बलादेव स्त्री गृहीता) यदि म्लेच्छों ने बलात्कार से किसी स्त्री को पकड़ लिया हो (गुर्वीकृता) और यदि उसे म्लेच्छ से गर्भ रहा हो तो (गुर्वी) गर्भिणी स्त्री (शुद्धिं नाप्नोति) शुद्ध नहीं होती; (इतरा) अन्य स्त्री (त्रिरात्रेण) तीन दिन में (शुध्यति) शुद्ध होती है।

योषा गर्भं विधत्ते या म्लेच्छात्कामादकामतः।
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या ॥४८॥
अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात्तस्याः शुद्धिः कथं भवेत्।
कृच्छ्रं सांतपनं शुद्धिर्घृतैर्योनेश्च पाचनम् ॥४९॥

(ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा वर्णेतरा च या योषा) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या किसी भी वर्ण की स्त्री यदि (कामादकामतः) अपनी इच्छा से या इच्छा के विरुद्ध (म्लेच्छाद्गर्भं विधत्ते) म्लेच्छ से गर्भ धारण कर (अभक्ष्यभक्षणं कुर्यात्) और अभक्ष्य भोजन करे (तस्याः) तो उसकी (शुद्धिः) शुद्धि (कथं भवेत्) किस प्रकार हो? (कृच्छ्रं सांतपनं) कृच्छ्र सांतपन से (घृतैर्योनेश्च पाचनं) और घी से योनि का पाचन करने से (शुद्धिः) शुद्धि प्राप्त होती है।

असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते।
अशुद्धा सा भवेत् नारी यावच्छल्यं न मुंचति॥ ५०॥

(असवर्णेन) असवर्ण पुरुष से (स्त्रीणां योनौ) स्त्री को (यो गर्भः) जो गर्भ (निषिच्यते) रहता है (यावत् शल्यं न मुंचति) उस गर्भ का जब तक मोचन न हो तब तक (सा नारी) वह स्त्री (अशुद्धा भवेत्) अशुद्ध रहती है।

विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वापि दर्शने।
तदा सा शुध्यते नारी विमलं कांचनं यथा॥ ५१॥

(ततः शल्ये विनिःसृते) परंतु गर्भमोचन होने पर (रजसो दर्शने वापि वा) या रजोदर्शन होने पर (तदा सा नारी) वह स्त्री (शुध्यते) शुद्ध होती है (यथा विमलं कांचनं) मानो कि (वह) पवित्र सुवर्ण है।

स गर्भो दीयतेऽन्यस्मै स्वयं ग्राह्यो न कर्हिचित्।
स्वजातौ वर्जयेत् असमसंकरः स्यादतोऽन्यथा ॥५२॥

(स गर्भो) वह गर्भ (अन्यस्मै) दूसरे को (दीयते) दिया जावे (कर्हिचित्) कभी भी (स्वयं न ग्राह्यः) स्वयं न ले; (स्वजातौ वर्जयेत्) उसे अपनी जाति से अलग रखना चाहिए (अन्यथा असमसंकरो जायते) नहीं तो उससे वर्णसंकर होगा।

गृहीता या बलान्म्लेच्छैः पंच षट् सप्त वा समाः।
दशादि विंशति यावत्तस्य शुद्धिं विधीयते ॥५३॥

(यो म्लेच्छैर्बलाद्गृहीतः तस्य) म्लेच्छ ने जिसे जबरदस्ती से भ्रष्ट किया हो उसकी (शुद्धिः) शुद्धि (पंच षट् सप्त वा समाः यावत् दशादि विंशति) पांच, छः, सात, या दस से बीस वर्ष तक (विधीयते) की जासकती है।

प्राजापत्यद्वयं तस्य शुद्धिरेषा विधीयते।
अतःपरं नास्ति शुद्धिः कृच्छ्रमेव सहोषिते ॥५४॥

(प्राजापत्यद्वयं) प्राजापत्यद्वय करने से (एषा तस्य शुद्धिः विधीयते) उसकी शुद्धि होती है (अतःपरं) इससे अधिक समय के पश्चात् (शुद्धिर्नास्ति) शुद्धि नहीं हो सकती (सहोषिते एव) यदि केवल सहवास ही हुआ हो तो (कृच्छ्रम्) कृच्छ्र करने से शुद्धि होती है।

म्लेच्छैः सहोषितो यस्तु पंचप्रभृति विंशतिः।
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चान्द्रायण द्वयम् ॥५५॥

(यः) जो (पंचप्रभृति) पांच वर्ष से (विंशतिं वर्षाणि) बीस वर्ष तक (म्लेच्छैः सहोषितः) म्लेच्छों के साथ रहा हो (तस्य) उसके लिए (चान्द्रायण द्वयं) दो चान्द्रायण करना (एषा शुद्धिरुक्ता) यही शुद्धि बताई गई है।

कक्षागुह्यशिरः श्मश्रुभ्रूलोमपरिकृन्तनम् ।

(कक्षा) बगल (गुह्य) गुह्य (शिरः) सिर (श्मश्रू) मूँछे (भ्रू) भ्रू आदि स्थानों के (लोम परिकृन्तनम्) बाल निकालने चाहिए ।

आहृत्य पाणिपादानां नखलोम ततःशुचिः ॥५६॥

(पाणिपादानां) हाथ पैरके (नखलोम) नख रोम (आहृत्य) निकालना चाहिए (ततः) ऐसा करने से (शुचि) शुध्दि होती है ।

यो दातुं न विजानाति प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः ।

शुद्धिं ददाति चान्यस्मै तदशुद्धः स भाजनम् ॥५७॥

(यो द्विजोत्तमः) जो विप्र (प्रायश्चित्तं दातुं) प्रायश्चित्त देना (न विजानाति) नहीं जानता (अन्यस्मै) परंतु तो भी दूसरों को (शुद्धिं ददाति) शुद्ध करदेता है (सः) वह (अशुद्धेः) अशुद्धिका (भाजनम्) पात्र होता है ।

सभायां स्पर्शने चैव म्लेच्छे न सह संविशेत् ।

कुर्यात् स्नानं सचैलं तु दिनमेकमभोजनम् ॥५८॥

(सभायां) सभा में (स्पर्शने चैव) स्पर्श हो तो भी (म्लेच्छेन सह) म्लेच्छके साथ (संविशेत्) बैठना चाहिये । (सचैलं तु स्नानं) किंतु सचैलस्नान (एकं दिनमभोजनम्) और एक दिन उपवास (कुर्यात) करना चाहिये ।

माता म्लेच्छत्वमागच्छेत्पितरौ वा कथंचन ।

असूतकं च नष्टस्य देवलस्य वचो यथा ॥ ५९ ॥

(कथंचन) किसी तरह (माता पितरौ वा) माता या पिता (म्लेच्छत्वमागच्छेत) म्लेच्छ हो जावे तो (नष्टस्य) उनकी मृत्यु से (असूतकं) अशौच नहीं होता । (यथा) जैसा कि (देवलस्य वचः) देवल का कहना है ।

मातरं परित्यज्य पितरं च तथा सुतः ।

ततः पितामहं चैव शेषपिण्डं तु निर्वपेत् ॥ ६० ॥

(मातरं तथा पितरं च परित्यज्य) ऐसे माबाप को छोड़ (सुतः) पुत्र शेषपिंडं पितामहं निर्वपेत्) बचे हुए शुद्ध पितामहादि को पिण्डदान करे ।

स्त्रीणां चैव तु शूद्राणां पतितानां तथैव च ।

पंचगव्यं न दातव्यं दातव्यं मंत्रवर्जितम् ॥ ६१ ॥

(स्त्रीणां शूद्राणां तथा पतितानां) स्त्री शूद्र और पतित इन्हें (पंचगव्यं) पंचगव्य (न दातव्यं) न देना चाहिये । (मन्त्रवर्जितं दातव्यं) यदि देना ही हो तो मंत्रवर्जित पंचगव्य दिया जावे ।

वरुणो देवता मूत्रे गोमये हव्यवाहनः ।

सोमः क्षीरे दध्नि वायुर्घृते रविरुदाहृतः ॥ ६२ ॥

(मूत्रे) गोमूत्र में (वरुणो) वरुण (गोमये) गोबर में (हव्यवाहनः) अग्नि (क्षीरे) दूध में (सोमः) चंद्र (दध्नि) दही में (वायुः) वायु (घृते) घी में (रविः) सूर्य (देवता उपाहृतः) देवता बताए गए हैं ।

गोमूत्रं ताम्रवर्णाया: श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।

पयः कांचनवर्णाया नीलायाश्चापि गोर्दधि ॥६३॥

घृतं वै कृष्णवर्णाया विभक्तिर्वर्णगोचरा ।

उदकं सर्ववर्णं स्यात्कस्य वर्णो न गृह्यते ॥६४॥

(ताम्रवर्णायाः गोमूत्रं) लाल गाय का मूत्र, (श्वेतायाश्चैव गोमयम्) सफेद गाय का गोबर, (कांचनवर्णायाः पयः) सुनहली गाय का दूध, (नीलायाश्च गोर्दधि) नीली गाय का दही, (कृष्णवर्णाया घृतम्) और काली गाय का घी लेना चाहिए। (वर्णगोचरा विभक्तिः) विशेष गुण वर्णपर निर्भर हैं । (उदकं सर्ववर्णं स्यात) पानी के सब रंग होते हैं । (कस्य वर्णो) पानी किसका रंग (न गृह्यते) नहीं लेता।

षण्मासिके तु गोमूत्रं गोमयं च कुशोदकम् ।

त्रिमासिकं घृतं क्षीरं दधि स्याद्दशमासिकम् ॥६५॥

(षण्मात्रिकं) छः भाग (गोमूत्रं गोमयं कुशोदकं च) गोमूत्र, गोबर और दर्भ जल, (त्रिमात्रिकं) तीन भाग (घृतं क्षीर) घी और दूध और (दशमात्रिकम्) दस भाग (दधि) दही (स्यात) होना चाहिए ।

व्रते तु सर्ववर्णानां पंचगव्यं तु संख्यया ।
प्रायश्चित्तं यथोक्त तु दातव्यं ब्रह्मवादिभिः ॥६६॥

(सर्ववर्णानां व्रते) सब वर्ण के लोगों के व्रत में (ब्रह्मवादिभि.) ब्राह्मणों को चाहिए कि वे (संख्यया पंचगव्यं) संख्यानुसार पंचगव्य और (यथोक्तं प्रायश्चित्तं) निश्चित प्रायश्चित्त (दातव्यं) दें ।

अन्यथा दापयेद्यस्तु प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः ॥६७॥

(यस्तु द्विजः) जो ब्राम्हण (अन्यथा दापयेत्) इस प्रकार न करेगा (प्रायश्चित्ती भवेत) वह प्रायश्चित्त का भागी होगा ।

कपिलायाश्च गोर्दुग्ध्वा धारोष्णं यः पयः पिबेत्।
एष व्यासकृतः कृच्छ्रः श्वपाकमपि शोधयेत् ॥६८॥

(यः) जो मनुष्य (कपिलायाः गोः पयः दुग्ध्वा) कपिला गाय का दूध निकालकर (धारोष्णं पिबेत्) धारोष्ण पियेगा वह (एष व्यासकृतः कृच्छ्रः) व्यास ऋषि ने बताए हुए इस कृच्छ्र से (श्वपाकमपि) चाण्डाल हो तो भी शुद्ध होगा ।

तिलहोमं प्रकुर्वीत जपं कुर्यादतन्द्रितः ।
'विष्णो रराट' मंत्रेण प्रायश्चित्ती विशुध्यते ॥६९॥

ॐ विष्णोरराटमसि विष्णोः पृष्ठमसि विष्णोरन्यप्त्रेस्थो विष्णोःस्यूरसि विष्णो ध्रुवमसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २॥

(तिलहोमं प्रकुर्वीत) तिलहोम करना चाहिए (अतन्द्रितः जपं कुर्यात) और ध्यानपूर्वक जप करना चाहिए (विष्णोरराटमंत्रेण) "विष्णोरराट" मंत्रसे (प्रायश्चित्ती) प्रायश्चित्त करनेवाला (विशुध्यति) शुद्ध होता है ।

बहुनाऽ किमुक्तेन, तिलहोमो विधीयते ।
तिलान्दत्त्वा तिलान्भुक्त्वा कुर्यातोऽघनिवारणम् ७०।

(अत्र बहुनोक्तेन किम्) अधिक क्या कहें (तिलहोमो विधीयते) तिल का होम करना चाहिए । (तिलान्दत्त्वा) तिल देकर और (तिलान्भुक्त्वा) तिल खाकर (अघनिवारणम्) पापनिवारण (कुर्यात) करना चाहिए ।

संपादयन्ति यद्विप्राः स्नानं तीर्थफलं तपः ।
संपादी क्रमते पापं तस्य संपद्यते फलं ॥७१॥

(विप्राः) ब्राह्मण (स्नानं तीर्थफलं तपः) स्नान, तीर्थका, फल, तप (यत् संपादयन्ति) आदि जो पुण्य प्राप्त करते है उससे (संपादी) वे पुण्य संपादन करनेवाले (पापं संक्रमते) पापसे मुक्त होते हैं और (तस्य फलं) उसका पुण्य भी (संपद्यते) उन्हें मिलता है ।

प्रायश्चित्तं समाख्यातं यथोक्तं देवलेन तु ।
इतरेषामृषीणां च नान्यथा वाक्यमर्हथ ॥७२॥

(देवलेन तु) देवल ऋषिने (यथोक्तं) इस प्रकार (प्रायश्चित्त) प्रायश्चित्त (समाख्यातं) बताया है । (इतरेषामृषीणां च) अन्य ऋषियों का (अन्यथा वाक्यं) इस के विरुद्ध मत (नार्हथ) नहीं हो सकता ।

सुवर्णदानं गोदानं भूमिदानं गवान्हिकम् ।
विप्रेभ्यः संप्रयच्छेत प्रायश्चित्ती विशुध्यति॥७३॥

(सुवर्णदानं) सुवर्णदान (गोदानं) धेनुदान (भूमिदानं) भूमिदान, (गवान्हिकम्) गाय के लिए आवश्यक खाद्यादि सामुग्री, (विप्रेभ्यः) ब्राह्मणों को (संप्रयच्छेत) देना चाहिए । (प्रायश्चित्ती विशुध्यति) इस से प्रायश्चित्त लेने वाले मनुष्य की शुद्धि होती है ।

पंचाहान्सहवासेन संभाषणसहाशनैः ।
संभाश्य पंचगव्यं तु दानं दत्त्वा विशुध्यति ॥७४॥

(पंचाहान्सहवासेन) पांच दिन सहवास (संभाषण सहाशनैः) संभाषण और सहभोजन हुआ हो तो (पंचगव्यं संप्राश्य) पंचगव्य पीकर (दानं दत्त्वा) दान देकर (विशुध्यति) मनुष्य शुद्ध होता है।

एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्वत्सरान्संवसेद्यदि ।
म्लेच्छवासं द्विजश्रेष्ठः क्रमते द्रव्ययोगतः ॥७५॥

(यदि) यदि (एकद्वित्रिचतुःसंख्यान्) एक, दो, तीन या चार (संवत्सरान्)साल तक (संवसेत्) म्लेच्छों के साथ रहे तो (द्विजश्रेष्ठः) ब्राह्मण (द्रव्ययोगतः)द्रव्य के साथ प्रायश्चित करनेसे (म्लेच्छवासं क्रमते) म्लेच्छवास के पातकसे मुक्त होता है ।

एकाहेन तु गोमूत्रं द्व्यहेनैव तु गोमयम् ।
त्र्यहात्क्षीरेण संयुक्तं चतुर्थे दधिमिश्रितम् ॥७६॥
पंचमे घृतसंपूर्णं पंचगव्यं प्रदापयेत् ।

(एकाहेन तु गोमूत्रं)एक दिन गोमूत्र, (द्व्यहेनैव तु गोमयम्) दो दिन गोबर, (त्र्यहात् क्षीरेण संयुक्तं) तीन दिन दूध मिला हुआ (चतुर्थे दधि मिश्रितम्) चौथे दिन दही मिला हुआ (पंचमे घृतसंपूर्णं पंचगव्य प्रदापयेत्) और पांचवे दिन घृतसंपूर्ण पंचगव्य देना चाहिए।

पंचसप्तदशाहानि पंचदशाथ विंशतिः ॥ ७७ ॥
संवासं च प्रवक्ष्यामि देहशुद्धिं द्विजन्मनाम् ।

(पंचसप्तदशाहानि) पांच, सात, दस, (पंचदशाथ विंशतिः) और पंद्रह से वीस दिन तक (संवासं) सहवास हुआ हो तो (द्विजन्मनां देहशुद्धिं)द्विजों की देहशुद्धि के लिए (प्रवक्ष्यामि) मैं प्रायश्चित्त बताता हूं।

पंचाहं पंचगव्यं स्यात्पादकृच्छ्रं दशाहिके ॥७८॥
पराकं पंचदशभिर्विंशेऽतिकृच्छ्रमेव च ।

(पंचाहं पंचगव्यं स्यात)पांच दिन का सहवास हुआ हो तो पंचगव्य देना चाहिये (दशाहिके पादकृच्छ्रं) दसदिन का सहवास हुआ हो तो पादकृच्छ्र करना चाहिये, (पंचदशभिः पराकं) पंद्रह दिन के सहवास में पराक और (विंशेऽतिकृच्छ्रमेव च) बीस दिन के सहवास में अतिकृच्छ्र करना चाहिये।

उदरं प्रविशेद्यस्य पंचगव्यं विधानतः ॥ ७९ ॥
म्लेच्छैर्नीतस्य विप्रस्य पंचगव्यं विशोधनम् ॥८०॥

(पंचगव्यं) पंचगव्य यदि (विधानतः) विधिपूर्वक (अस्य उदरं प्रविशेत्)मनुष्य के पेट में पहुँचे तो (पंचगव्यं) उस पंचगव्य से (म्लेच्छैर्नीतस्य विशोधनम्) म्लेच्छभ्रष्ट मनुष्य की शुद्धि होती है ।

पंचगव्यं च गोक्षीरं दधि मूत्रं घृतं पयः ।
यत्किंचिद् दुष्कृतं तस्य सर्वं नश्यति देहिनः ।
पंच सप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोऽपि विंशतिः ।
प्राश्यापरेऽहन्युपवसेत्कृच्छ्रं सांतपनं चरेत् ॥८१॥

(गोक्षीरं) गाय का दूध (दधि) दही (मूत्रं) मूत्र (घृतं) घी (पयश्च) और पानी (पंचगव्यं) यही पंचगव्य है । (पंचसप्ताष्ट दश वा द्वादशाहोऽपि विंशतिः)पांच, सात, आठ, दस या बारह दिन के सहवास का पातक आदि (तस्य देहिनः) मनुष्य का (यत्किंचिद् दुष्कृतं) जो कुछ भी पाप हो (सर्वं नश्यति) उस सब का नाश होता है। (प्राश्य) पंचगव्य पीकर (अपरेऽहनि) दूसरे दिन (उपवसेत) उपवास करना चाहिये । (सांतपनं कृच्छ्रं) इससे सांतपन कृच्छ्र का (चरेत्) आचरण होता है ।

पृथक्सांतपनं द्रव्यैः षडहः सोपवासकः ।
सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासांतपनः स्मृतः॥ ८२ ॥

(षडहः) छः दिन तक (द्रव्यैः) अलग अलग पदार्थों से (सोपवासकः) उपवास करने से (पृथक्सांतपनं) पृथक्सांतपन होता है । (सप्ताहेन तु) इसी

प्रकार सात दिन तक उपवास करने से (अथ कृच्छ) कृच्छ होता है । (महासानपनः स्मृत) उसे महा सातपन कहते है ।

पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकै ।
प्रत्येक प्रत्यह पीतै पू(प) र्णकृच्छ्र उदाहृत ॥८३॥

(पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वकुशोदकः) पर्ण, उदुम्बर, कमल, बिल्वपत्र और कुश इनका उदक (प्रत्यह प्रत्येक पीतैः) एक एक दिन यथाक्रम पीने से (पुर्ण कृच्छ्र उदाहृतः)पूर्ण कृच्छ्र होता है ।

तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैक प्रत्यहं पिबेत ।
एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः ॥८४॥

(तप्तक्षीरघृताम्बूनाम्) तपा हुआ दूध, घी और पानी (प्रत्यह एकैक) एक एक दिन क्रमसे (पिबेत्) पीने से, (एकरात्रोपवसश्च) और एक रात्रि उपवास करने से (पावन तप्तकृच्छ्र)तप्तकृच्छ्र नामक पवित्र प्रायश्चित्त होता है ।

एकभुक्तेन नक्तेन तथैवाऽयाचितेन तु।
उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्र उदाहृतः ॥८५॥

(एकभुक्तेन) एक वार भोजन करके (नक्तेन) नक्त करने से (तथैव अयाचितेन) उसी प्रकार अयाचित वृत्तिसे रहने से (एकेन उपवासेन च) या एक उपवास करने से (पादकृच्छ्र उदाहृत) पाद कृच्छ्र होता है ।

कृच्छ्रातिकृच्छ्र पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
द्वादशाहोपवासेन पराक परिकीर्तितः ॥८६॥

(एकविंशतिं दिवसान्) इक्कीस दिनतक (पयसा) दूध पर रहने से (कृच्छ्रातिकृच्छ्र) कृच्छ्राति कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है । (द्वादशाहोपवासेन) बारह दिन के उपवास से (पराक परिकीर्तित) पराक प्रायश्चित्त होता है ।

पिण्याकशाकतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्र सौम्य प्रकीर्तितः ॥८७॥

(पिण्याकशाकतक्राम्बुसक्तून) माण्ड, भाजी, मठा, पानी और सत्तु (प्रतिवासरम्) एक एक दिन खाकर (एकरात्रोपवासश्च) एक रात्रि उपवास करने से (कृच्छ्र सौम्य प्रकीर्तित) सौम्य कृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है ।

एषा त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाक्रमम्।
तुलापुरुष इत्येष ज्ञेय पचदशाहिक ॥८८॥

(एषा) इन पदार्थों में से (एकैकस्य) एक एक का (यथाक्रमम्) यथाक्रम (अभ्यासात) भक्षण करने से (पचदशाहिक) पंद्रह दिन का (तुलापुरुष इत्येष ज्ञेय) तुलापुरुष नामक प्रायश्चित्त होता है ।

तिथिवृद्ध्या चरेत्पिण्डाञ्छुक्ले शिख्यण्डसमितान् ।
एकैक ह्रासयेत्पिण्डान्कृष्णे चान्द्रायण चरेत ॥८८॥

(शुक्ले) शुक्लपक्ष में (तिथिवृद्ध्या) तिथिक्रम से (शिख्यण्डसमितान् पिण्डान् चरेत) मोर के अण्डे के बराबर ग्रास बढ़ाते जाना चाहिए और कृष्ण पक्ष में (पिण्डानेकैक ह्रासयेत्) एक एक ग्रास कम करते जाना चाहिए । (कृष्णे चान्द्रायण चरेत) इस से चान्द्रायण नामक कृच्छ होता है ।

यथा कथंचित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् ।
इति देवलेन कृत धर्मशास्त्र प्रकीर्तितम् ॥९०॥

(यथा कथंचित्) किसी भी प्रकार महीने के (चत्वारिंशच्छतद्वय) दो सौ चालीस ग्रास होने चाहिए । (इति) इस प्रकार (देवलेन कृत धर्मशास्त्र प्रकीर्तितम्) देवल ऋषी ने धर्म शास्त्र कथन किया है ।

समाप्तेय देवलस्मृति ।

यहाँ देवल स्मृति समाप्त होती है ।